ख़ुर्रम मुराद
की
आख़िरी वसीयत

ख़ुर्रम मुराद

अनुवाद
शमशाद हुसैन ख़ान

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

दो शब्द

जनाब ख़ुर्रम मुराद (मरहूम) इस्लामी दुनिया के एक बड़े आलिम और मुबल्लिग़ हुए हैं। उन्होंने कई किताबें लिखीं और अपनी तक़रीरों, दर्से-क़ुरआन और नसीहतों के ज़रीए भी लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाया। बेशुमार लोग उनकी बातों से मुतास्सिर हुए और उन्होंने अपनी ज़िन्दिगयों को सँवारा और सुधारा।

वसीयत करने का आम रिवाज हमारे समाज में मौजूद है। वसीयत करनेवाला चाहता है कि उसके मरने के बाद उसकी औलाद और रिश्तेदार उसकी वसीयत पर अमल करें। लोग, जिनको वसीयत की जाती है वे भी, कोशिश करते हैं कि मरनेवाले की वसीयत पूरी की जाए। आम तौर पर लोग रूपयों-पैसों, ज़मीन-जायदाद और इस तरह की दूसरी चीज़ों के बारे में वसीयत करते हैं। ऐसी वसीयतें कम ही की जाती हैं जिनमें अच्छी बातों को अपनाने और बुराइयों को छोड़ने की बात की गई हो। जो लोग ख़ुदा को मानते हैं और मरने के बाद की ज़िन्दगी पर यक़ीन रखते हैं और समझते हैं कि मरने के बाद इनसान को अच्छे कामों के बदले जन्नत मिलेगी और बुरे कामों के बदले जहन्नम, ऐसे लोगों को सबसे ज़्यादा फ़िक्र इस बात की होती है कि वे ख़ुद और उनकी औलाद बल्कि सारे इनसान वहाँ जहन्नम से बच सकें और ख़ुदा की नेमतों से मालामाल जन्नत के हक़दार बन सकें। इसलिए वे अपनों को वसीयत करते वक़्त इस बात का ज़रूर ख़याल रखते हैं।

ख़ुर्रम मुराद (मरहूम) ने इस किताब में अपनी औलाद को जो वसीयतें की हैं वे असूल में उनको जहन्नम से बचाने और जन्नत का हक़दार बनाने के लिए ही की हैं। एक बाप या सरपरस्त इस बात को कभी

सहन नहीं कर सकता कि उसकी औलाद या रिश्तेदारों को जहन्नम की एक चिंगारी भी छूए। इसलिए उसकी कोशिश होती है कि मरने से पहले वह उन्हें मरने के बाद पेश आनेवाले हालात से बाख़बर कर दे और वह रास्ता और तरीक़ा भी बता दे जो वहाँ की ज़िन्दगी में उन्हें सच्ची कामयाबी दिला सके। इस पहलू से 'ख़ुर्रम मुराद की आख़िरी वसीयत' हर उस शख़्स के लिए है जो मरने के बाद जहन्नम से बचना चाहता हो और ख़ुदा की ख़ुशी हासिल करके जन्नत का हक़दार बनने की आरज़ू और तमन्ना रखता हो।

'इस्लामी साहित्य ट्रस्ट' इस्लामी किताबों को हिन्दी ज़बान में पेश करने के मुबारक काम में लगा हुआ है। 'ख़ुर्रम मुराद की आख़िरी वसीयत' को हिन्दी में पेश करने का हमें मौक़ा मिला, इस पर हमें दिली ख़ुशी हो रही है, इसके लिए हम ख़ुदा का शुक्र अदा करते हैं।

हमें उम्मीद है कि यह किताब पढ़नेवालों का रिश्ता ख़ुदा और उसके दीन से मज़बूत करेगी और उनके अन्दर दीन को समझने और पूरी ज़िन्दगी में उसपर अमल करने का जज़्बा और शौक़ पैदा करेगी। ज़रूरत इस बात की है कि हर बाप और हर सरपरस्त ख़ुद इस वसीयत को पढ़े और अपनी औलाद और रिश्तेदारों, दोस्तों और दूसरे लोगों को भी यह वसीयत ज़रूर सुपुर्द करे।

ख़ुदा से हमारी दुआ है कि वह जनाब ख़ुर्रम मुराद (मरहूम) को अपनी नेमतों से मालामाल फ़रमाए और हमें भी!

—नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

अध्यक्ष

1.12.08 इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि.), दिल्ली

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, बहुत रहमवाला है।"

वसीयत की अहमियत

अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने इरशाद फ़रमाया–

> "किसी मुसलमान पर दो रातें ऐसी न गुज़रनी चाहिएँ कि उसके पास वसीयत मौजूद न हो।"

मैं भी यह वसीयत अल्लाह के नबी *(सल्ल.)* के इसी इरशाद की तामील में लिख रहा हूँ।

मौत से कोई नहीं बच सकता। यह किसी वक़्त भी आ सकती है, कहीं भी आ सकती है, अचानक भी आ सकती है, इस तरह भी आ सकती है कि कोई पास न हो, लोग पास हों भी तो वे सगे-सम्बन्धी न हों, सगे-सम्बन्धी हों भी तो उनसे कुछ कहने का मौक़ा न मिले और किसी चीज़ के बारे में वसीयत करने की नौबत न आए। अल्लाह का इरशाद है–

> "हक़ीक़त यह है कि अल्लाह का मुक़र्रर किया हुआ वक़्त जब आ जाता है तो फिर टाला नहीं जाता। काश तुम्हें इसका इल्म हो!"
>
> (क़ुरआन, 71:4)

> "उस वक़्त ये वसीयत तक न कर सकेंगे, न अपने घरों को पलट सकेंगे।" (क़ुरआन, 36:50)

मौत आती है तो दुनिया की हर चीज़ से हर क़िस्म के सम्बन्ध और

ताल्लुक़ात बिलकुल टूट जाते हैं, किसी चीज़ पर कोई ज़ोर बाक़ी नहीं रहता। हर प्रकार के निजी और भौतिक सामान एवं संसाधन छूट जाते हैं। किसी चीज़ के बारे में किसी दख़ल और इस्तेमाल का इख़्तियार नहीं रहता।

वसीयत हर वक़्त तैयार रखने की हिदायत इसलिए है कि तमाम काम और मामले हुस्न व ख़ूबी के साथ सुलझ सकें। अधिकारों और ज़िम्मेदारियों की अदायगी का बन्दोबस्त हो सके, अमानतें अदा हो सकें और जहाँ तक मुमकिन हो वे चीज़ें अन्जाम पा सकें जो इनसान चाहता है।

वसीयत हर वक़्त तैयार रखना इस बात की लगातार याददिहानी के लिए भी फ़ायदेमन्द है कि एक दिन से ज़्यादा, आज के दिन के बाद, ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं कि वह रहेगी या नहीं। इस याददिहानी से वह कैफ़ियत पैदा होती है जिसकी तालीम नबी *(सल्ल.)* ने यूँ दी है—

> "सुबह हो तो शाम की उम्मीद न रखो। शाम हो तो सुबह की न रखो। दुनिया में एक मुसाफ़िर या राहगीर की तरह रहो।" (हदीस)

लेकिन अफ़सोस की बात है कि, सब जानते और बूझते हुए भी, सुस्ती और टालमटोल ऐसे छाई रही कि सुबह होती रही और शाम होती रही, मगर वसीयत लिखने की नौबत आ रही है तो आज...... आज जबकि उम्र की 63 मंज़िलें गुज़र चुकी हैं, और मौत, जो कभी भी कुछ दूर न थी, लगातार क़रीब आती रही है, और अब तो बहुत ही क़रीब आ गई है। यह अफ़सोस और शर्मिन्दगी इसलिए है कि मेरा मामला हर आम आदमी की तरह का मामला नहीं, जिसे वसीयत तैयार रखने की हिदायत की गई है। पहले हार्ट अटैक के बाद, जो नवम्बर 1966 में हुआ और सबसे सख़्त अटैक था, अल्लाह तआला ने मुझे अब तक 30 साल की बोनस उम्र दी है, मोहलत दी है। इस लम्बी मुद्दत में मैं एक आम आदमी से कहीं ज़्यादा लगातार रोज़-बरोज़ बढ़ते हुए मौत के ख़तरे में रहा हूँ। इस

मुद्दत में चार हार्ट-अटैक और हुए, तीन बार एम्बुलेन्स में इन्तिहाई निगरानी में गया जिससे वापसी की उम्मीद कम ही होती है। 20 साल से एन्जाइना है, चार बार एन्जियोग्राफ़ी हो चुकी है। दो-बार बाई पास सर्ज़री हो चुकी है। सिर्फ़ बाईपास नहीं, बल्कि वाल्व की वजह से ओपन हार्ट सर्जरी हुई, एक वाल्व प्लास्टिक का है। 1991 के हार्ट-अटैक के बाद एन्जाइना बराबर बढ़ ही रहा है। अब नौबत यहाँ तक पहुँच गई है कि तीसरी सर्जरी के बारे में संजीदगी से ग़ौर हो रहा है। दो हफ़्ते लाहौर में हार्ट-वार्ड में गुज़ारकर अब इंगलैण्ड में हूँ। 8 फ़रवरी को फिर एन्जियोग्राफ़ी होनेवाली है ताकि तय किया जा सके कि आगे क्या करना है........जो तक़रीबन यक़ीनी है कि ऑपरेशन ही होगा। मगर अल्लाह जो चाहे। मैं कहता रहा हूँ कि अगर मुझे कुछ हो जाए और मेरी मेडिकल हिस्ट्री छपे तो लोगों को ताज्जुब इसपर नहीं होगा कि यह क्यों मर गया, बल्कि होगा तो इसपर होगा कि ये अब तक ज़िन्दा कैसे रहा.......लेकिन इस सबके बावजूद भी वसीयत न लिखी जा सकी। यह गफ़लत कुछ वसीयत के मामले ही में नहीं है। सारी कमियों, कोताहियों और नाकामियों का हाल यह है कि सब कुछ जानते-बूझते भी होती रही हैं। उम्र का बेशतर सरमाया इन ही कोताहियों की भेंट चढ़ गया है।

ऐसा नहीं कि सुस्ती और टालमटोल की इस लम्बी मुद्दत के दौरान, मैं मौत से बिलकुल ग़ाफ़िल या वसीयत लिखने की फ़िक्र से बिलकुल ख़ाली रहा हूँ। मौत को याद रखने की कोशिश बहुत अर्से से रही है। ख़ासकर 1982 के बाद और भी ज़्यादा। पिछले पाँच सालों में तो कभी-कभी यही सोचता रहा हूँ कि एक साँस आई, पता नहीं दूसरी आएगी या नहीं, और आएगी भी तो अल्लाह के हुक्म से। एक बार दिल धड़का, दूसरी बार धड़केगा या नहीं, और धड़केगा तो अल्लाह के हुक्म से। रात को सोते तो मौत को याद करके ही सोते, भूल न जाऊँ तो यह कहता हूँ कि 'इन अम्सक-त-हा फ़र-हम्हा' (अगर तू मेरी जान को रोक ले तो उसपर रहम

करना)। 1982 के ऑपरेशन से पहले तुम सबके नाम, दूसरों के नाम भी ख़त लिख लिए थे और वसीयत भी नर्स के हवाले कर दी थी। पिछले एक साल से तो लगातार फ़िक्र लगी रही है। लेकिन बस लिखने के दूसरे काम इतना वक़्त लेते रहे कि नौबत न आई। लाहौर के अस्पताल में तो वसीयत लिखना शरू कर दी थी, लेकिन फिर सिलसिला टूट गया। अब यहाँ फ़ारूक़ के घर में आज 27 जनवरी, 1996 को नए सिरे से लिखना शुरू कर रहा हूँ। तर्जुमानुल-क़ुरआन पत्रिका का काम अब भी सिर पर है। बस अल्लाह से दुआ है कि वह इसे मुकम्मल करवा ही दे।

इस वसीयत के मुख़ातब लम्अत, अहमद, हसन, फ़ारूक़, फ़रह, उवैस, फ़ाइज़ा, हुमा, नौशाबा, सीमा, बिलाल, मरयम और उनके बच्चे हैं। इनके ज़रीए से इसका अक्सर व बेशतर हिस्सा आम हो तो मेरी तरफ़ से कोई मनाही नहीं, लेकिन मेरी कोई वसीयत भी नहीं कि ऐसा किया जाए।

आम वसीयतें

मुझसे जुदाई पर तुम्हें जो रंज व ग़म होगा, उसका मुझे बख़ूबी अन्दाज़ा है। जितनी मुहब्बत होती है और ताल्लुक़ होता है, उतना ही जुदाई पर रंज व ग़म ज़्यादा होता है। तुमको मुझसे जिस क़द्र मुहब्बत है, उसमें मुझे कोई शक नहीं। इसलिए इस बारे में कुछ बातें सामने रखो और उनपर अमल करो, अल्लाह तआला इस मामले को तुम्हारे और मेरे लिए हमेशा रहनेवाले ख़ैर और बरकत का ज़रीआ बना देगा। तुम्हें अपनी कैफ़ियतों पर क़ाबू पाने में भी मदद मिलेगी–

1. दिल का ग़म अल्लाह की उस रहमत की बरकत है जो उसने तुम्हारे दिल में रख दी है। दिल की रिक़्क़त (नरमी) और आँखों के आँसू भी उसकी रहमत की बख़शिश हैं। इस ग़म को और इस नमी को अल्लाह का इनाम समझो। दिल की ऐसी सख़्ती कि वह हादसों पर पिघलकर न दे, और आँखों की ऐसी ख़ुश्की कि वह बहकर न दें, अल्लाह की रहमत से दूरी और महरूमी की अलामत है। इस बात को अच्छी तरह याद रखना, यह मरहम का काम भी करेगी, सहारे और सवाब का ज़रीआ भी बनेगी।

2. नबी *(सल्ल.)* ने बिलकुल ऐसे ही मौक़े के लिए फ़रमाया, जब कि आप *(सल्ल.)* ख़ुद ऐसी ही कैफ़ियत से दोचार थे–

> "बेशक हम जुदाई पर ग़मगीन हैं, आखें ग़मनाक हैं, लेकिन अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी हैं।"

नबी *(सल्ल.)* के इस सहारे में तसल्ली और सब्र का सामान भी पाओगे और रंज व ग़म की वह हद भी, जहाँ तुमको रुक जाना चाहिए।

रंज व ग़म में भी अल्लाह के नबी *(सल्ल.)* की पैरवी की नीयत ज़रूर रखना, आप *(सल्ल.)* से क़ुर्बत नसीब होगी, जो ख़ुद तसल्ली और सहारे का बड़ा सामान है। फिर इस रंज व ग़म का अज्र (सवाब) भी मिलेगा और अल्लाह की मुहब्बत भी नसीब होगी। क़ुरआन में कहा गया है –

"फ़त-तबिऊनी युह् बिब कुमुल्लाह।"

"मेरी पैरवी करो, अल्लाह तुमसे मुहब्बत करेगा।"

और ये क़ीमती तोहफ़े कुछ न कुछ मुझे भी पहुँचेंगे, इन्शा-अल्लाह।

3. जो चीज़ें अल्लाह को पसन्द नहीं, उसक़ो नाराज़ करती हैं, उन्हें भी याद रखना और उनसे बचना, ये बातें ईमान के ख़िलाफ़ हैं........दिल और आँख तुम्हारे इख़तियार में नहीं, इनको रोकना और थामना ज़रूरी भी नहीं, बल्कि ये कैफ़ियतें अल्लाह की बख़शिश हैं। लेकिन ज़बान को थामना ज़रूरी है, और यह तुम्हारे इख़तियार में है। कोई ऐसी बात मुँह से न निकले जो ख़ुदा के फ़ैसले के ख़िलाफ़ हो। रोना-पीटना न हो, गिला-शिकवा न हो, मायूसी और अफ़सोस न हो। यही रवैया तुम्हारी तरफ़ से मेरे लिए सबसे पहला अनमोल तोहफ़ा होगा, जो उन कठिन मक़ामात पर मेरे बहुत काम आएगा जिनसे आँख बन्द होते ही मुझे दोचार होना पड़ेगा और इनशा-अल्लाह, तुम्हारे लिए भी बेमानी और बेकार बातों के मुक़ाबले में यह तरीक़ा ज़्यादा से ज़्यादा अज्र (सवाब) का ज़रीआ होगा।

4. सबसे बढ़कर इस बात की निगरानी करना कि ज़बान से कोई लफ़्ज़ मायूसी का हरगिज़ न निकले, न दिल किसी हसरत में मुबतला हो। यह तो हरगिज़ न कहना, न सोचना कि "अगर! काश ....ऐसा होता........ऐसा न होता...... तो यह न होता।" नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया है कि "लौ (काश, अगर) शैतानी अमल का दरवाज़ा खोल देता है।" अल्लाह तआला ने फ़रमाया है कि "यह काफ़िरों (अवज्ञाकारियों) का क़ौल है। तुम उनकी तरह न हो जाओ जिन्होंने कुफ़्र (इनकार) किया,

और सफ़र या ख़ुदा की राह में मरनेवाले प्यारों के बारे में कहते हैं कि –

"अगर (न जाते) हमारे पास रहते तो न मरते, न क़त्ल किए जाते।"
(क़ुरआन, 3:156)

ये बातें तो अल्लाह की तरफ़ से उनके दिलों में लाहासिल हसरत की आग भड़काने के लिए हैं।

5. यह सोच और यह गुफ़्तगू, सिर्फ़ हसरत औरे जलन का सामान इसलिए भी है कि जो कुछ होना था, हो चुका, वह अब किसी हालत में पलटाया नहीं जा सकता। इसलिए भी है कि जो कुछ होना था, वह उसी तरह, उसी वक़्त और उसी मक़ाम पर होना था, पहले से कोई भी उपाय कर लिया जाता तो भी उससे बचने की कोई सूरत न थी। ये दो बातें अच्छी तरह याद रखोगे तो अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी होने की आधी कैफ़ियत हासिल हो जाएगी।

बार-बार याद करना, ख़ुद को और सबको याद दिलाना कि हुक्म, तद्बीर (उपाय) और अधिकार सिर्फ़ अल्लाह के लिए है। असबाब जो निगाहों से नज़र आते हैं उसकी तदबीर का ज़रीआ हैं। जिसका दामन ख़ुदा की ख़ुदाई से ख़ाली है, उसकी निगाह इन ही असबाब में अटक जाती है, यही असबाब उसके और रब के दरमियान हिजाब बन जाते हैं।

वरना जो कुछ पेश आता है, अल्लाह के हुक्म से पेश आता है –

"कोई मुसीबत कभी नहीं आती मगर अल्लाह के हुक्म ही से आती है।" (क़ुरआन, 64:11)

यही दिल को सीधा रखने का नुस्ख़ा है :

"जो शख़्स अल्लाह पर ईमान रखता हो, अल्लाह उसके दिल को हिदायत बख़्शता है।" (क़ुरआन, 64:11)

जो मुसीबत पड़ गई, टल न सकती थी, जो नहीं पड़ी, वह पड़ नहीं सकती थी।

सारे जिन्न व इनसान मिलकर भी कोई नुक़सान रोकना चाहें, कोई नफ़ा पहुँचाना चाहें, तो कुछ नहीं कर सकते –

"क़लम उठा लिए गए और किताबें ख़ुश्क हो गईं।"

ख़ास तौर पर मौत। कोई भी अल्लाह के हुक्म के बिना उसकी लिखी हुई मुद्दत से एक लम्हा पहले या बाद नहीं मर सकता।

मौत का समय आ जाए, कोई उसे टाल नहीं सकता। वजह कोई भी हो, जहाँ मरना होगा और जिस तरह मरना होगा, उसी की तरफ़ ज़बरदस्ती ले जाया जाएगा।

"जिन लोगों की मौत लिखी हुई थी वे ख़ुद अपनी क़त्लगाहों की तरफ़ निकल आते।" (क़ुरआन, 3:154)

जब हर चीज़ पहले से लिखी हुई है तो किसी भी चीज़ के हाथ से निकल जाने पर मायूसी और पछतावे का शिकार क्यों बनें। क़ुरआन कहता है –

"ताकि जो कुछ तुम गंवा बैठे हो उसपर तुम्हें अफ़सोस न हो।"

नबी *(सल्ल.)* की यह दुआ, मक़ामे-इबराहीम की दुआ भी है, और तसलीम (सुपुर्दगी) व रिज़ा (ख़ुशनूदी) के मक़ामे इबराहीमी से लाभ उठाने का बड़ा प्रभावकारी ज़रीआ भी। अगर अब तक नहीं माँगते रहे हो तो अब बाक़ायदगी से माँगना शुरू कर दो। बहुत मुफ़ीद पाओगे—

अल्लाहुम्-म इन्नी अस-अलु-क ईमानइँ युबाशिरु क़ल्बी व यक़ीनन सादिक़न हत्ता अअ्-ल-म अन्नहू लँय युसी-बनी इल्ला मा कतब-त ली व-रिज़न बिमा क़स्सम-त ली।

"ऐ अल्लाह मैं तुझसे ऐसा ईमान माँगता हूँ जो दिल में समा जाए,

और सच्चा यक़ीन, यहाँ तक कि मैं यह जान लूँ कि मुझे कोई तकलीफ़ नहीं पहुँचती, सिवाए उसके जो तू ने मेरे लिए लिख दी, और राज़ी हो जाऊँ उसपर जो तूने मेरी क़िस्मत में कर दिया।''

वही हुआ जो उसने लिख दिया था। इससे बढ़कर यह भी याद करना कि जो कुछ उसने ले लिया वह उसी का था, इसलिए कि उसी का दिया हुआ था। जो कुछ उसने दिया था वह आरज़ी (वक़्ती) था। उसे बहरहाल फ़ना (नष्ट) हो जाना था। फिर इसपर नाउम्मीदी और मायूसी का क्या सवाल, और रोना-पीटना किस लिए? बस यह पढ़ो कि –

'लिल्लाहि मा-अ-ख़-ज़ व लिल्लाहि मा-अअ्ता

''अल्लाह ही का है जो उसने लिया और अल्लाह ही का है जो उसने दिया।''

और **'इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन।'**

''बेशक हम अल्लाह ही के हैं और बेशक हम उसी की तरफ़ पलटनेवाले हैं।''

मुझसे जुदाई ही के मामले में नहीं, दुनिया की किसी भी चीज़, महबूब से महबूब चीज़ से जुदाई, उसके छिन जाने, उसके न मिलने पर, अपने दिल, सोच और ज़बान को इन्ही तालीमात के साथ बाँधे रखना। तुम इनमें इत्मीनान और सुकून का एक अथाह और कभी न ख़त्म होनेवाला ख़ज़ाना पाओगे। दुनिया के तमाम ग़म दूर हो जाएँगे, तुम्हारी झोली इत्मीनान और सुकून से भर जाएगी। अज्र भी बेहद और बे-हिसाब पाओगे। इसलिए कि यही सब्र की असल है, और –

''सब्र करनेवालों को तो उनका अज्र (इनाम) बेहिसाब दिया जाएगा।'' (क़ुरआन, 39:10)

6. मैं अपने बारे में अल्लाह के फ़ैसले से राज़ी होने और नाउम्मीदी

और मायूसी से परहेज़ करने की तुमको इस शिद्दत के साथ ताकीद दो वजहों से कर रहा हूँ –

एक इसलिए कि बीमारियों और उसके कारणों के सिलसिले को देखते हुए इस बात की पूरी उम्मीद है कि मेरी मौत दिल की बीमारी की वजह से हो। हालाँकि मुझे यक़ीन है कि दिल की इतनी लम्बी बीमारी के बावजूद अल्लाह ने कोई दूसरा सबब लिखा होगा तो वही सबब होगा। हो सकता है मोहलत मिले, हो सकता है न मिले। किसी मसरूफ़ियत के दौरान, या उसके फ़ौरन बाद ऐसा हो। ऐसी हालत में सबकी निगाह फ़ौरन कारण पर जाती है। यही कहा जाता है कि "यह न कर रहे होते, वह न करते होते तो......." निगाह असबाब के पैदा करनेवाले पर नहीं जाती। यह नहीं कहा जाता कि **माशा अल्लाह वला कुव्व-त इल्लाबिल्लाह**। मेरी तुमको यही नसीहत है कि अपनी निगाह, फ़ितरी असबाब से पूरी तरह हटा लो– फ़ौरी सबब हो या लम्बी बीमारी और मेरी मसरूफ़ियत का सबब और सिर्फ़ ग़ैब के पर्दे के पीछे छिपा हुआ, लेकिन दिल की आँख और बसीरत (विवेक) के सामने ज़ाहिर और वास्तविक कर्त्ता (अल्लाह) के ऊपर जमा लो। सबब और बहाना कोई भी बन सकता था, हादसा भी हो सकता था, लेकिन जो कुछ हुआ, वही होना था, उसी वक़्त होना था और उसी तरह होना था। जो कुछ किया अल्लाह ने किया –

माशा अल्लाहु का-न वमा लम-यशा लम-यकून।

"जो उसने चाहा हो गया और जो नहीं चाहा नहीं हुआ।"

मैं तो अर्से से रोज़ सुबह वे दुआएँ बाक़ायदगी से पढ़ता हूँ जिनमें यह कलिमा शामिल है। तुम भी पढ़ा करो और हर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद अल्लाह के नबी *(सल्ल.)* की पैरवी में यह दुआ भी पढ़ो –

ला इला-ह इल्लल्लाहु वह-दहू ला-शरी-क-लहू लहुल-मुल्कु व लहुल-हम्दु व हु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर।

अल्लाहुम-म ला-मानि-अ लिमा अ अ़्तै-त वला मु अ़्ति-य लिमा मनअ़्त।

"अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं। वह एक है, कोई उसका शरीक नहीं, बादशाही उसके लिए है, तारीफ़ उसके लिए है, वह हर चीज़ पर क़ादिर है। ऐ अल्लाह! जो तू अता करे उसे रोकनेवाला कोई नहीं, और जो तू रोके उसे अता करनेवाला कोई नहीं।"

ख़ास तौर पर आज के इस माद्दी दौर में......जब हर बात की ताबीर माद्दी असबाब (भौतिक संसाधनों) ही से की जाती है.... इस बारीक व छिपे हुए शिर्क से बचने का नुस्ख़ा यही है कि दिल व निगाह का केन्द्र बिन्दु 'माशा अल्लाह वला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाह' को बनाए रखो। सब्र का भी सबसे कारगर नुस्ख़ा यही है।

वमा सबरु-क इल्ला बिल्लाह।

"तुम सब्र नहीं कर सकते मगर अल्लाह के सहारे।"

दूसरी वजह जो ज़्यादा अहम है वह यह है कि इसकी भी बहुत उम्मीद है कि फ़ौरी वजह अल्लाह के किसी काम में मशग़ूल होना हो। तक़रीर करते हुए, कुछ लिखते हुए, किसी इजतिमा में बैठे हुए, किसी से मुलाक़ात करते हुए, मामूली या ग़ैर-मामूली तौर पर किसी काम में व्यस्त और मशग़ूल होने के दौरान। अगर वजह अल्लाह का काम हो, फ़ौरन करने का हो या हमेशा करते रहने का तो उस काम को दोषी मानना, न सिर्फ़ वास्तविक कर्त्ता (अल्लाह) से निगाह हटा लेना होगा, बल्कि जो काम उसको महबूब है, उसकी तरफ़ से दिल में तंगी और ज़बान पर इलज़ाम ही उसको नाराज़ करने का कारण भी बन सकता है। अब भी आम तौर से जमाअत, जमाअत के कामों और जमाअत के लोगों पर इलज़ाम रख दिया जाता है। अब भी तदबीरों की सूची में सबसे ऊपर इसी काम को कम करने को रखा जाता है। आराम के मानी इसी काम से

आराम के होते हैं, और दुनिया की दूसरी बेशुमार ज़ेहनी मशग़ूलियतें और भीड़-भाड़ एवं परेशानियों का कोई ज़िक्र नहीं होता। मुझे यह अब भी नागवार होता है, और डर लगता है कि अल्लाह को भी नागवार न हो। इसलिए इस मौक़े पर मैं सख़्ती से यह तांकीद करूँगा कि तुम्हारी तरफ़ से ऐसी कोई बात न कही जाए, न सोची जाए, दूसरे कहें तो उसका खण्डन किया जाए। हाँ, दिल में आ जाए तो कोई बात नहीं।

अगर अल्लाह की राह में काम करते हुए कोई काम जुदाई का फ़ौरी वजह बने तो उसपर अल्लाह का शुक्र अदा करना चाहिए। मेरी तो अब दुआ यही है कि अगर शहादत नसीब में न हो तो कम से कम मौत अल्लाह का काम करते हुए आए। शायद यह ज़िम्मेदारियों को अदा करते हुए (On Duty) मौत भी किसी दरजे में शहादत में शुमार हो जाए। क़त्ल के साथ अलग से मौत के ज़िक्र के कुछ मानी तो हैं :

> ''अगर तुम अल्लाह की राह में मारे जाओ या मर जाओ तो अल्लाह की जो रहमत और बख़शिश तुम्हारे हिस्से में आएगी वह उन सारी चीज़ों से ज़्यादा बेहतर है जिन्हें ये लोग जमा करते हैं।''
>
> (क़ुरआन, 3:157)

मुझे तो इस बात का यक़ीन है कि अगर मुझे आज तक तीस साल की मोहलत मिली है, और इतने हार्ट-अटैक और ऑपरेशनों के बावजूद मिली है, और इतनी सहूलत से मिली कि दो ऑपरेशन बिलकुल बिना ख़र्च के हो गए, और उसी तरह मिली है कि मैं एक नार्मल आदमी से ज़्यादा ही भरपूर काम करता रहा हूँ तो इसकी वजह वही बरकत है जो अल्लाह का काम करने से हासिल हुई है, बुरा-भला जैसा भी हो करता रहा हूँ। बल्कि सोचता हूँ तो जितना भरपूर काम, अच्छे नतीजे वाला वक़्त, इन तीस सालों में गुज़रा है, वह इससे पहले नहीं हो सका। बल्कि तहरीर (लेखन) का तो तक़रीबन सारा काम 1981 के बाद हुआ है जब लीस्टर (ब्रिटेन) में दूसरा हार्ट-अटैक हुआ और एन्जियोग्राफ़ी और ऑपरेशन का सिलसिला

शुरू हो गया। मुझे उम्मीद है कि आइंदा जो मोहलत मिलेगी वह इसी लिए के मैं उसका काम करता रहूँ। बल्कि मोहलत कम हो और वह काम में गुज़रे, यह मुझे ज़्यादा महबूब है उसके बदले कि मोहलत ज़्यादा हो और सारा वक़्त एहतियात, आराम और कुछ न कर सकने में गुज़र जाए।

7. सब्र से आगे तसलीम व रिज़ा का एक मक़ाम और है, और वही असूल अल्लाह के फ़ैसलों पर राज़ी होना है। इसपर भी अपनी निगाह जमाने की कोशिश करो। वह यह कि हर मुसीबत में भलाई और अच्छाई देखो जो अल्लाह ने उसमें तुम्हारे लिए रख दी है। इसलिए कि वह केवल भलाई है –

"और हर तदबीर, तक़दीर, क़ज़ा (मौत) उसी की तरफ़ से है।"

हो सकता है कि तुम्हारी महदूद निगाह उस ख़ैर (भलाई) को फ़ौरन न देख सके। एक भलाई तो यह है कि तुम सब्र करोगे, अल्लाह की निकटता और साथ पाओगे, दुनिया और आख़िरत की सबसे ऊँची और अनमोल नेमतों और लज़्ज़तों से लुत्फ़ उठाओगे। मुसीबत न पड़ती तो ये सब कुछ कैसे हासिल होता। ग़ौर करो तो न इस फ़ानी (नष्ट हो जानेवाली) दुनिया की बड़ी से बड़ी नेमत, हक़ीक़ी नेमत है, न यहाँ की बड़ी से बड़ी मुसीबत सही मानों में मुसीबत है। एक तो हर एक को गुज़र जाना है। दूसरे जिस नेमत पर अल्लाह का शुक्र न हो, वह एक मुसीबत है कि जिस दिन 'नेमतों के बारे में पूछने' (क़ुरआन, 102:8) का मंज़र होगा, वह बलाए जान बन जाएगी। और जिस मुसीबत पर अल्लाह के लिए सब्र हो, वह एक नेमत है कि उसका क़ीमती अज्र हमेशा के लिए है। इसी लिए अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "मोमिन् का मामला भी क्या ख़ूब है! नेमत मिलती है तो शुक्र अदा करता है और कभी न कम होनेवाला अज्र पाता है...... मुसीबत पड़ती है तो सब्र करता है और कभी न ख़त्म होनेवाला अज्र पाता है।" तुम दोनों हालतों में यही अज्र लूटने की कोशिश करना। इस कैफ़ियत और अज्र में से जो नसीब हो जाए उसपर

ख़ुशियाँ मनाना, जो हाथ से निकल जाए उसपर ग़म मनाना, न कि दुनिया की फ़ानी नेमतों के न मिलने या मुसीबतों के पड़ने से।

हर मुसीबत में तुम्हारे लिए तज़किया और तर्बियत का सामान भी है और अगर तुम उसे अल्लाह की तरफ़ से देखने लगो, जो 'ईमानवालों पर बहुत ही रहमतवाला है' (क़ुरआन, 33:43), तो हर मुसीबत उसकी देन है, दोस्त के दीदार का सामान है, उससे मुलाक़ात और क़रीब होने का ज़रीआ, और इसलिए शुक्र का मौक़ा भी।

8. अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी होना मजबूरी का मामला नहीं कि जो होना था वह हो गया। बल्कि उसपर रज़ामंदी और पसन्दीदगी का मामला है, और उसके बदले में अज्र की उम्मीद और उसकी लज़्ज़त की ख़ुशी का मामला है। ग़म तो ताल्लुक़ टूटने का है, आपसी मुहब्बत की लज़्ज़त, क़रीब होने की लज़्ज़त, साथ बैठने की लज़्ज़त, बात-चीत की लज़्ज़त ख़त्म हो जाने का ग़म है। लेकिन इससे कोई नहीं बच सकता, यह लज़्ज़त आज न ख़त्म होती तो कल होती। लेकिन इन्हीं लज़्ज़तों का पक्का वादा अल्लाह तआला ने सब्र और तक़्वा करनेवालों से फ़रमाया है। ऐसी लज़्ज़त जिसका तसव्वुर भी तुम नहीं कर सकते –

> "फिर जैसा कुछ आँखों की ठण्डक का सामान उनके आमाल (कर्मों) के अज्र के बदले में छिपा रखा है उसकी किसी इनसान को ख़बर नहीं।" (क़ुरआन, 32:17)

और हमेशा बाक़ी रहनेवाली, क़ायम रहनेवाली नेमत (क़ुरआन, 9:21) .... "उसमें वे हमेशा रहेंगे" (क़ुरआन, 2: 25,82) .... "उसमें रहनेवाले हैं हमेशा" (क़ुरआन, 4:122)।

देखो, आज जो चीज़ ख़त्म हो गई उसी का वादा है कि कल मिलेगी। "(जन्नतों में) तख़्तों पर आमने-सामने विराजमान होंगे" (क़ुरआन, 37:44) में आपस में मिल बैठने की लज़्ज़त हासिल होगी

''निश्चय ही जन्नतवाले आज किसी न किसी काम में व्यस्त आनन्द ले रहे हैं'' (क़ुरआन, 36:55) में दिलचस्प व लज़ीज़ मशग़ूलियतों की लज़्ज़त मिलेगी। ख़ासकर बीवियों और औलाद के साथ, ''वे और उनकी बीवियाँ घने सायों में, मसनदों पर तकिये लगाए हुए।'' (क़ुरआन, 36:56) इस लज़्ज़त के मुक़ाबले में वह वक़्ती लज़्ज़त क्या हैसियत रखती है, जो आज हम और तुमसे ले ली गई है। ईमान और नेक अमल के लिए कोशिश करते रहो, इस पर अल्लाह का यक़ीनी वादा है। हिसाब आसान होगा, फिर मिलेंगे, हमेशा साथ रहेंगे। ''जो लोग ईमान लाए हैं और उनकी औलाद भी किसी दर्जे ईमान में उनके नक़्शे क़दम पर चली है; उनकी इस औलाद को भी हम (जन्नत में) उनके साथ मिला देंगे'' (क़ुरआन, 52:21) का वादा। ''और वह अपने लोगों की ओर ख़ुश-ख़ुश पलटेगा।'' (क़ुरआन, 84:9) अपने सगे-सम्बन्धियों की तरफ़ ख़ुश व ख़ुर्रम, क़ामयाब व बामुराद वापसी की लज़्ज़त का वादा। ''यानी ऐसे बाग़ जो उनकी हमेशा रहनेवाली क़ियामगाह होंगे, ख़ुद भी उनमें दाख़िल होंगे और उनके बाप-दादा और उनकी बीवियों और उनकी औलाद में से जो नेक हैं वे भी उनके साथ वहाँ जाएँगे'' (क़ुरआन, 13:23), का वादा।

9. मैंने प्रचलित अर्थ और अंदाज़ में तुम्हें सब्र की नसीहत नहीं की है, न करना चाहता हूँ। लेकिन अब तक जिन बातों की वसीयत की है, उनके द्वारा सब्र की अज़ीम राह को तुम्हारे लिए आसान और कुशादा कर दिया है, उसके दरवाज़ों की कुंजियाँ तुम्हारे हाथों में थमा दी हैं। मुझे उम्मीद है कि तुम इन कुंजियों से सब्र के, और इस तरह जन्नत के, दरवाज़े ख़ुद अपने लिए खोल लोगे और सहूलत के साथ इस राह पर चलोगे। इस मौक़े ही पर नहीं, सारी ज़िन्दगी में सुकून व इत्मीनान और कामयाबी व सरफ़राज़ी का राज़ सब्र ही में छिपा हुआ है।

''इस तरह बनी-इसराईल के हक़ में तेरे रब का सच्चा वादा पूरा हुआ, क्योंकि उन्होंने सब्र से काम लिया था।'' (क़ुरआन, 7:137)

जहाँ तक मौत के सिलसिले में मेरी कैफ़ियत का ताल्लुक़ है, वह मैं बता दूँ। आज का हाल यही है, कल क्या होगा यह अल्लाह बेहतर जानता है। उसकी पसन्दीदा कैफ़ियत हो तो वह उसे बाक़ी रखे और बढ़ाए, नापसन्दीदा हो तो इस्लाह कर दे।

पहला : मौत का डर एक फ़ितरी कैफ़ियत है। मैं इससे कभी ख़ाली न रहा, आज भी नहीं हूँ, शायद मरते वक़्त भी न रहूँगा। मौत की तकलीफ़ का डर, मौत के बाद के मरहलों का डर। बीमारी के ख़ौफ़ व डर से किसी को भी छुटकारा नहीं। पैग़म्बरों को भी नहीं। हज़रत मूसा *(अलै.)* मिस्र से निकले तो 'नगर से डरे हुए' (क़ुरआन, 28:18), ख़ौफ़ज़दा, डरते और सहमते। 'असा' (लाठी) साँप बन गया तो डर के मारे उलटे पाँव फिरे। दम निकलने की तकलीफ़ तो इसी दुनिया की तकलीफ़ है। हज़रत आइशा *(रज़ि.)* की रिवायतें नबी *(सल्ल.)* के बारे में "इनसानियत मौत के दरवाज़े पर" में जो पढ़ा है, दिल उसे सोचकर डरता ही है।

दूसरा : इस बात का भी इक़रार है कि क़ायदे के साथ, तेरी मुलाक़ात के लिए जाने के शौक़ की दुआ करने और अपने करीम के चेहरे को देखने की लज़्ज़त तलब करने के बावजूद, उसकी कैफ़ियत से दोचार नहीं हो सका। मौत, जो 'अल्लाह से मुलाक़ात' का दरवाज़ा है, को सोचकर ही ख़ौफ़ शौक़ पर ग़ालिब आ जाता है, और उसके करीम चेहरे पर नज़र की लज़्ज़त की आरज़ू भी उसपर हावी नहीं होने पाती, या शायद ये पता ही नहीं कि बीमारी के डर के साथ अक़्ली शौक़ व लज़्ज़त की कैफ़ियत किस तरह जमा हो सकती है। कुछ सहारा मिलता है तो हज़रत आइशा *(रज़ि.)* की इस रिवायत से, जिसमें बयान किया गया है कि जब अल्लाह के नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, जो अल्लाह से मुलाक़ात से मुहब्बत करता है तो वह भी उससे मुलाक़ात को महबूब रखता है, और जो अल्लाह से मुलाक़ात को नापसन्द करता है अल्लाह भी उससे मिलने को नापसन्द करता है। हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने फ़ौरन मौत के लिए अपनी फ़ितरी नापसन्दीदगी

का सवाल खड़ा कर दिया, "हममें से हर शख़्स मौत को नापसन्द करता है।" नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "मेरा मतलब यह नहीं, बल्कि जब मोमिन को अल्लाह की नेमत, रिज़ा और जन्नत की ख़ुशख़बरी दी जाती है तो अल्लाह से मुलाक़ात उसको महबूब हो जाती है (या ऐसा ही कुछ कहा)।" लेकिन मैं जब अपने आमाल को देखता हूँ तो ख़ुशख़बरी की उम्मीद कम ही होती है, मुहब्बत और शौक़ पर ख़ौफ़ ही ग़ालिब आ जाता है। फिर भी हज़रत मूसा *(अलै.)* की तरह यही दिल की आवाज़ होती है,

> "परवरदिगार! जो ख़ैर भी तू मुझपर नाज़िल कर दे मैं उसका मोहताज हूँ।" (क़ुरआन, 28:24)

शायद शौक़ में रुकावट मौत का डर उतना नहीं, जितना अपने बुरे आमाल का डर है।

तीसरा : दुनिया की हद तक आज तो थोड़ी-बहुत कैफ़ियत यह महसूस होती है कि किसी भी चीज़ के छूट जाने का ग़म इस तरह न लगेगा कि सताएगा, और हक़ीक़त को अल्लाह बेहतर जानता है। दुनिया में भी अब किसी माद्दी (भौतिक) नुक़्सान का कोई रोग जान को नहीं लगता। कोई ऐसी आरज़ू और ख़ाहिश नहीं कि जिसके पूरा न होने पर हसरत और अफ़सोस हो। बल्कि अब तो यह समझ में नहीं आता कि कोई रक़म हाथ आ जाए तो अपना कौन-सा शौक़ है जो पूरा करूँगा, सिवाय इसके कि दूसरों के शौक़ पर ख़र्च कर दूँ, या अल्लाह की राह में दे दूँ, या किसी के लिए कुछ अपने बाद इन्तिज़ाम कर दूँ।

हाँ, अगर कुछ ताल्लुक़ लगता है तो एक, उन चीज़ों से जो बोली या लिखी हुई मौजूद हैं, मगर छपने के क़ाबिल न बना सका, या वे जो दिलो-दिमाग़ में हैं, न लिख सका, न बोल सका। दूसरे, उनका ख़याल है जिनकी सारी ख़ुशियों का दारोमदार ही मेरे ऊपर है कि उनकी गुज़र कैसे होगी, या उनका जिनका बज़ाहिर मेरे बाद कोई बन्दोबस्त नज़र नहीं

आता। दोनों हालतों में इत्मीनान अल्लाह पर भरोसे से ही हासिल होता है। और न मालूम कितने लोग, मुझसे कहीं बेहतर, नामुकम्मल ख़यालात और मुसव्वदे (पाण्डुलिपियाँ) छोड़कर रुख़सत हो गए। जब अल्लाह ही को मंज़ूर नहीं तो मुझे क्या फ़िक्र करनी। अब तक जो छप गया उसने क्या तीर मार लिया और जो बेहतरीन किताबें दूसरों की मौजूद हैं, उनसे ही क्या हासिल हो रहा है। और क्या मालूम, जिस तरह 1981 ई. के बाद बहुत मुद्दत गुज़र गई, अल्लाह तआला ने आज के बाद भी मोहलत रखी हो, और यह बीमारी उस फ़ुर्सत के लिए बहाना बन जाए, जो बहुत-से कामों को पूरा करने के लिए दरकार है। जहाँ तक इनसानों का ताल्लुक़ है, अब भी ख़बर लेनेवाला वही है, और, वह हमेशा ज़िन्दा रहनेवाला है, उसके लिए मौत नहीं है। वही काफ़ी होगा– 'और कारसाज़ की हैसियत से अल्लाह ही काफ़ी है।'

तुम सबके बारे में मेरी जो आरज़ुएँ और तमन्नाएँ रही हैं, वे अक्सर दुआ के साँचे में ढलकर बयान होती रही हैं। तालीम व तर्बियत का काम तो मैं बहुत कम ही कर सका हूँ। इस लिहाज़ से अपनी कोताहियों के लिए क़ियामत के दिन मेरा दामन नहीं पकड़ा जाएगा। साथ ही अल्लाह के उस बहुत बड़े एहसान का शुक्र मेरे वश से बाहर है कि उसने तुम सबको मेरी आरज़ुओं और मेरे आमाल से कहीं बढ़कर नेक और परहेज़गार बनाया, और अपने दीन के लिए काम करनेवाला बनाया है। लोग इसका क्रेडिट मुझे देते हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि इसमें किसी की कोशिश को दख़ल है तो तुम्हारी अपनी कोशिशों को और तुम बच्चों की हद तक तुम्हारी माँ को। लेकिन यह देन तो ख़ालिस अल्लाह की है, तुमपर भी उसकी नेमत और मेरे ऊपर भी।

ये आरज़ुएँ और तमन्नाएँ, कुछ खुली और कुछ छिपी हमेशा ही रही होंगी और रही हैं, लेकिन जब मैं 1971 ई. में ढाका में तुम सबसे इस तरह जुदा हुआ कि दोबारा मिलने की उम्मीद कम ही थी, जिस तरह मौत जुदा

करती है, 16 दिसम्बर 1971 ई. को इस हाल में घर से निकला कि हर तरफ़ गोलियाँ चल रही थीं। हालत यह थी कि जानवर के पास भी अपना ठिकाना होता है, कुछ दिनों तक तो मुझे नज़र न आता था कि कहाँ पनाह लूँगा। किसी मख़लूक़ से पनाह की दरख़ास्त भी न करना चाहता था, और न अल्लाह के शुक्र से किसी से पनाह चाही।

फिर अल्लाह ने पनाह भी दी, इज़्ज़त के साथ दी, हिफ़ाज़त भी की और क़ैदियों के एक कैम्प में मेरी मौजूदगी पर पर्दा डाले रखा। वहाँ भी एक दिन सिरों पर से गोलियाँ गुज़रती रहीं, हम औंधे ज़मीन पर लेटे रहे और उसने महफ़ूज़ रखा और फिर सही-सलामत तुम सबसे ला मिलाया, और फिर बची हुई ज़िन्दगी क़ुरआन की उस आयत की तस्वीर बन गई जिसमें कहा गया है –

> "अपनी मदद से तुम्हारे हाथ मज़बूत किए और तुम्हें अच्छा रिज़्क़ पहुँचाया।" (क़ुरआन, 8:26)

कैम्प की ज़िन्दगी में, तीन सौ आदमियों के पिंजरे में, भीड़ के बावजूद एकान्त का मज़ा था कि ज़िन्दगी की कोई दूसरी मशग़ूलियत (व्यस्तता) और फ़िक्र न थी, और तुम सब की फ़िक्र मैंने अल्लाह पर छोड़ दी थी, जैसे आज छोड़ रहा हूँ। लेकिन किसी दर्द और तमन्ना के बिना, सबसे बढ़कर ताल्लुक़ और असूल में देखा जाए तो तुम ही से था। इस मुद्दत में जब अल्लाह ने लगभग हर रात ही सुबह के वक़्त की दुआ की नेमत बख़्शी, तो तुम्हारे बारे में सभी आरज़ुएँ दुआ के साँचे में ढल गईं। उसके बाद से आज तक, जब भी और जितनी भी इस दुआ की तौफ़ीक़ दी गई, उसमें तुम्हारा हिस्सा रहा। अमलन कुछ न कर सका, मगर उससे माँगता तो रहा। आज तक जो कुछ माँगता रहा, उसी की वसीयत और ताकीद तुमको कर रहा हूँ। जो कुछ मैं तुम्हें बनता देखना चाहता रहा हूँ, वही तुम बनने की कोशिश में लगे रहो, यही मेरी आख़िरी तमन्ना है और वसीयत भी।

मेरा दिल इसपर गवाह है कि मैंने जो कुछ माँगा था, अल्लाह ने तुम्हें वह बहुत कुछ दिया। इसी लिए मुझे पूरी उम्मीद है कि आइंदा भी मेरी दुआ और तुम्हारी कोशिश से बहुत कुछ देगा, दुनिया में भी और आख़िरत में भी। दुनिया को मैं पहले इसलिए रखता हूँ कि दुनिया ही दीन और आख़िरत की कुंजी है। 'रब्बना आतिना' की दुआ में अल्लाह ने भी इसे पहले रखा है।

ख़ास वसीयतें

(1)

दिल का धनी

दुनिया की हद तक मैंने सबसे पहले जो चीज़ माँगी है, वह यह है कि अल्लाह तुम्हें दिल का धनी बनाए और दिल को दुनिया से बे-नियाज़ रखे। देखो दीन और दुनिया की असल दौलत यही दिल का धनी होना है। सारी भलाइयों का सरचश्मा (स्रोत) यही है। सारी बुराइयों की जड़ यही 'दुनिया से मुहब्बत' है। यही वह चीज़ है जिसके बारे में एहसास है कि अल्लाह तआला ने तुम सबको किसी न किसी दर्जे में दी है। यानी मेरी दुआ क़बूल की है। इससे ये उम्मीद बँधती है कि और दूसरी दुआएँ भी क़बूल हुई होंगी, वे भी जो मेरे अपने बारे में हैं। जितनी यह दौलत तुम्हें मिल गई है उसकी क़द्र करना, उसकी हिफ़ाज़त करना, उसको बढ़ाने की कोशिश करना। जहाँ कमी हो, दूरी हो, उसे भरना। परहेज़गारी दुनिया का त्याग नहीं, बल्कि दुनिया से मुहब्बत का त्याग है। दुनिया की हलाल और पाक व लज़ीज़ नेमतों से लुत्फ़ उठाओ, लेकिन किसी के क़ैदी न बनो, किसी के साथ दिल न लगाओ। अच्छा खाओ, अच्छा पहनो, अच्छी तरह रहो, दौलत भी रखो, कमाओ भी, मगर किसी के साथ दिल न अटकाओ। इसका होना और न होना बराबर हो जाए, इसी की कोशिश में रहो। अल्लाह तआला ख़ुशहाली दे तो बेझिझक उसकी देन समझकर सीने से लगाओ। तंगी में डाले तो भी उसकी अता समझकर शुक्र अदा करो। मज़ेदार खाना सामने हो, सूखी रोटी हो या भूखे रहने की नौबत, हर एक को उसकी बख़्शिश समझो, हर एक हालत में लुत्फ़ और मज़ा लो। जब

दिल दुनिया से बेनियाज़ होगा तो दुनिया की ख़ातिर उस अल्लाह की नाफ़रमानी क्यों करोगे जिसके तुम तन, मन और जान से मोहताज हो। फिर इस दुनिया के छिन जाने पर या न मिलने पर रंज व ग़म का क्या सवाल। बस दुनिया की ख़ातिर अल्लाह की नाराज़ी मोल न लेना, न कभी दुनिया की ख़ातिर जान को ग़म का रोग लगाना।

(2)

किसी मख़लूक़ के आगे हाथ न फैलाना

दुनिया की हद तक दूसरी चीज़ मैंने यह माँगी है कि अल्लाह तआला तुम्हें किसी मख़लूक़ का मोहताज न बनाए, सिर्फ़ अपना मोहताज बनाए, किसी के आगे हाथ फैलाने की नौबत न आए, सिर्फ़ अपना भिखारी बनाए। नबी करीम *(सल्ल.)* ने कुछ सहाबियों *(रज़ि)* से ख़ास बैअत (इताअत का वादा) ली थी कि किसी से सवाल न करना। सवारी पर से उनका कोड़ा भी गिर जाता तो वे ख़ुद उतरकर उठा लेते, किसी से दरख़ास्त न करते। मैं इसपर अमल तो ठीक-ठीक कभी न कर सका, लेकिन यही मेरा आइडियल रहा है। तुम्हारे लिए भी यही आइडियल होना चाहिए। जहाँ तक मुमकिन हो तुम इसपर अमल की कोशिश करो। इसका तरीक़ा यह है कि सारी उम्मीदें सिर्फ़ अल्लाह से रखो, लोगों के पास जो कुछ है, उनके हाथों में जो कुछ है, उससे सारी उम्मीदें तोड़ लो।

> "और इनसानों के हाथों में जो कुछ है उससे पूरी तरह मायूस हो जाओ। ऐ अल्लाह, मेरे दिल में सिर्फ़ अपने से उम्मीद डाल दे और अपने अलावा किसी दूसरे से उम्मीद ख़त्म कर दे।" (हदीस)

इनसानी ताल्लुक़ात की ज़्यादातर ख़राबियाँ और ज़िन्दगी की अधिकतर नाख़ुशियाँ टूटी हुई उम्मीदों (Broken Expectations) का नतीजा होती हैं। इस तरह ताल्लुक़ात भी बिगाड़ और फ़साद से पाक हो जाएँगे और नाख़ुशियों से भी छुटकारा मिलेगा।

(3)

हलाल और पाक रोज़ी की दुआ

तीसरी चीज़ मैंने यह माँगी है कि वह दुनिया में तुम्हें हलाल व पाक रोज़ी खूब बढ़ाकर दे। कम से कम इतना ज़रूर दे कि तुम बेफ़िक्री के साथ अपनी ज़रूरतें पूरी कर सको, क़नाअत (संतोष) के साथ खुश रहो और दुनिया से लुत्फ़ भी उठा सको।

इतनी दुनिया दीन की हिफ़ाज़त के लिए ज़रूरी है। दुनिया से इतना हिस्सा लेने से ग़फ़लत और लापरवाही न बरतना। यह इबादत में दाख़िल है, और दूसरी इबाइतों के हुस्न के लिए ज़रूरी। इसलिए इस हद तक दुनिया कमाने को इबादत समझकर ही काम करना। लेकिन यह भी यक़ीन रखना कि जितना मिलना है, वह ज़रूर मिलेगा। हराम रास्तों पर चलने से कुछ ज़्यादा न मिल जाएगा। अपनी ज़रूरतों को मुख़्तसर रखना।

(4)

अमानतदारी

दुनिया के और रोज़गार की तलाश के, हक़ूक़ की अदायगी के सारे काम भी एक अमानत हैं। इन्हें पूरी अमानतदारी के साथ करो। ईमानदारी का दामन कभी हाथ से न छोड़ो। पूरी ज़िम्मेदारी से अपना काम पूरा करो। हर काम को अच्छे से अच्छे तरीक़े से करो, ख़ूब से ख़ूब बेहतर की तलाश में रहो। दुनिया के हर काम में भी कामयाबी को निशाना बनाओ और कामयाबी के भी ऊँचे से ऊँचे दर्जे को। दीनदारी इस बात का नाम नहीं कि आदमी दुनिया से लापरवाही बरते। हर काम इबादत होगा अगर उसे अल्लाह के लिए करोगे और गुनाह से पाक रखोगे।

(5)

अल्लाह की ख़ुशी

असूल आरज़ू तो यह है, सिर्फ़ यही है, और सब कुछ भी इसी आरज़ू की ख़ातिर है कि अल्लाह के बन्दे बनकर ज़िन्दगी गुज़ारो, सच्चे और पक्के बन्दे। बन्दगी यह है कि एक तरफ़ जो उसकी मर्ज़ी और हुक्म है और जिन चीज़ों से उसने रोका है उन सब बातों पर भी ख़ुशी और प्यार के साथ अमल करो, बल्कि अल्लाह की ख़ुशी और मुहब्बत में दौड़-दौड़कर वह काम भी करो जिनको उसने फ़र्ज़ नहीं किया, मगर जिनसे वह ख़ुश होता है। मुहब्बत तो महबूब की आँख के इशारे के इंतिजार में रहती है। कुछ कहे बिना भी उसकी मर्ज़ी जान लेती है, उसके चेहरे पर निगाह रखती है। इसी हालत का इज़हार नमाज़ के बाद तीन बार इस इज़हार व इक़रार से होता है –

> "मैं अल्लाह को अपना रब बनाकर, इस्लाम को अपना दीन बनाकर और मुहम्मद *(सल्ल.)* को अपना नबी तस्लीम करके राज़ी हो गया।"

जिसने यह कैफ़ियत हासिल कर ली, उसने ईमान का मज़ा पा लिया।

दूसरी तरफ़ उसने तुम्हें जिस हालत में पैदा किया है उसपर भी राज़ी रहो, यानी वह जिस तरह कहे, उस तरह ख़ुशी-ख़ुशी करो और जिस तरह रखे। उस तरह ख़ुशी-ख़ुशी रहो। 'अल्लाह ने जो कुछ मेरी क़िस्मत में रखा है उसपर मैं राज़ी हूं' की इस कैफ़ियत का इज़हार व इक़रार भी नमाज़ के बाद के कलिमों से करो।

> **ला इला-ह इल्लल्लाह वह्दहू ला शरी-क लहू लहुल मुल्कु व लहुल हम्दु व हु-व अला कुल्ली शैइन क़दीर। अल्लाहुम-म ला मानि-अ लिमा अअ्तय-त वला मुअ्ति-य लिमा मनअ्-त।**

"अल्लाह के अलावा कोई माबूद नहीं। वह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं। उसके लिए मुल्क और उसी के लिए तारीफ़ है और वह हर चीज़ की क़ुदरत रखता है। ऐ अल्लाह उस चीज़ को कोई रोक नहीं सकता जिसे तू देना चाहे और उस चीज़ को कोई दे नहीं सकता जिसे तू रोकना चाहे।"

(6)

अल्लाह के सच्चे बन्दे बनो

अल्लाह के सच्चे बन्दे बनो। एक तरफ़ तो दुनिया का कोई भी काम ऐसा न हो जो बन्दगी का काम न हो। यहाँ तक कि खाना, पीना, सोना, हँसना, बोलना भी। नबी *(सल्ल.)* ये सारे काम करते थे। आप *(सल्ल.)* मुकम्मल बन्दे थे। आप *(सल्ल.)* का कोई काम ऐसा न था जो बन्दगी का काम न हो। लेकिन दूसरी तरफ़ जो ज़्यादा ज़रूरी है वह यह कि हर काम सिर्फ़ अल्लाह के लिए करो, सिर्फ़ अल्लाह की मर्ज़ी के लिए और अल्लाह से लौ लगाओ :

"दूसरी तरफ़ इनसानों ही में कोई ऐसा भी है जो अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने की चाह में अपनी जान खपा देता है।"

(क़ुरआन, 2:207)

और –

"वह तो सिर्फ़ अपने सर्वोच्च मालिक की ख़ुशी के लिए काम करता है।" (क़ुरआन, 92:20)

इस तरह का इरादा तुम्हारा भी हो। इसके बिना बड़े से बड़ा दीनी काम ...... नमाज़, क़ुरआन, तौहीद व रिसालत की गवाही, अल्लाह की राह में ख़र्च........भी दुनियावी काम है। इसके साथ, छोटे से छोटा दीनी काम और दुनिया का हर काम तौल में भारी है। इख़्लास हासिल कर लोगे तो

कम अमल भी फ़ायदा पहुँचाएगा, दिल और ज़िन्दगी में अल्लाह का रंग पैदा करेगा। दिल में, ज़िन्दगी में, आपसी ताल्लुक़ात में, दुनिया में सारे फ़साद की जड़ इख़्लास की कमी है, ख़ास तौर पर दीनी कामों में।

अपनी नीयत को अल्लाह के लिए ख़ालिस करना, और ख़ालिस रखने की कोशिश में लगे रहना .... यह मुख़्तसर और आसान नुस्ख़ा है, ख़ुलासा है सारे दीन का, और सारी ज़िन्दगी को दीन के मुताबिक़ बनाने का। अल्लाह को हर वक़्त याद करने और याद रखने का भी सबसे असरदार नुस्ख़ा यही है। यही हमेशा रहनेवाला और हर वक़्त का ज़िक्र है।

(7)

उम्मीद और डर

हर काम अल्लाह के लिए करना आसान होगा अगर तुम हर वक़्त यह याद रखोगे कि यह काम अल्लाह के सामने पेश होगा, और उसी हाल में क़बूल होगा कि सिर्फ़ उसी की ख़ुशी के लिए हो। उसके साथ अपनी निगाह जन्नत और जहन्नम पर भी रखो, जिस अज्र व सवाब या अज़ाब व क़हर का वादा किया गया है उसकी तलब या उससे बचने पर निगाह रखो। जन्नत का लालच और जहन्नम की आग का ख़ौफ़, ये दो चीज़ें बन्दगी की राह पर तुम्हारे दो मज़बूत बाज़ू साबित होंगे। क़ुरआन में कहा गया है–

> "अपने रब को ख़ौफ़ और लालसा (लालच) के साथ पुकारते हैं।" (क़ुरआन 32:16)

इसी लिए नबी *(सल्ल.)* ख़ुश ख़बरी देनेवाले और ख़ुदा का ख़ौफ़ दिलानेवाले बनाकर भेजे गए थे कि लालच और ख़ौफ़ से तबीयतों को बंदगी के लिए तैयार कर दें।

(8)

अल्लाह का ज़िक्र

अल्लाह की याद को मज़बूती के साथ पकड़ लो। हर तरह इसका एहतिमाम करो। हर वक़्त करो, सुबह-शाम, रात-दिन करो। हर हालत में करो, खड़े, बैठे, लेटे करो। अल्लाह की याद से ही दिल के इत्मीनान का सामान करो –

अला बि-ज़िकरिल्लाहि ततमइन्नल-क़ुलूब।

(9)

ख़ुदा की क़ुदरत का तसव्वुर

याद रखो कि ख़ुदा हर वक़्त तुम्हारे साथ है–

व हु-व मअ़कुम अय-न मा कुन्तुम।

तुम दो हो तो तीसरा वह है, जो सब कुछ देख रहा है, सुन रहा है। दिल की गहराइयों में जो कुछ है वह भी जानता है। कल क्या होगा यह भी उसके इल्म में है –

इन्नल्ला-ह बिकुल्लि शैइन अ़लीम।

(10)

क़ुदरत और मिल्कियत

याद रखो कि इस कायनात में सिर्फ़ उसका हुक्म चलता है और किसी का नहीं। हर चीज़ उसकी मिल्कियत है, उसकी फ़रमाँबरदार है। वह हर

चीज़ पर क़ुदरत रखता है। कोई चीज़, कोई काम उसकी क़ुदरत से बाहर नहीं–

> "वह तो जब किसी चीज़ का इरादा करता है तो उसका काम सिर्फ़ यह है कि उसे हुक्म दे कि हो जा, और वह हो जाती है।"
>
> (क़ुरआन, 36:82)

(11)

हम्द व शुक्र

याद रखो कि हर नेमत उसी से मिली है। हम्द और शुक्र उसी के लिए है –

> **वमा बिकुम मिन निअमतिन फ़मिनल्लाह .... अल्हमदु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन।**
>
> "तुम्हें जो नेमत भी मिलती है वह अल्लाह की तरफ़ से है। .... हम्द अल्लाह के लिए है जो सारे जहानों का रब है।"

अगर तुमने हम्द व शुक्र के मानी जान लिए, हर नेमत को उसकी देन और अता जान लिया और हर नेमत पर उसका शुक्र अदा करना सीख गए तो समझ लो तुमने ईमान की हक़ीक़त पा ली। ये हम्द व शुक्र तराज़ू को भर देंगे। दुनिया की ज़र्रा बराबर नेमत मिले, एक लुक़्मा या एक घूँट, ज़रा सी तकलीफ़ और नुक़सान से बच जाओ, ज़र्रा बराबर नेकी की तौफ़ीक़ मिले, "अल्हम्दु लिल्लाह" (तमाम तारीफ़ें अल्लाह के लिए) कहने की तौफ़ीक़ मिले.......तो उनमें से हर चीज़ पर शुक्र वाजिब है, हर चीज़ पर शुक्र करो। तुम्हारी सुबह हम्द के तराने से शुरू हो, दिन भर यही नग़मा ज़िन्दगी के तारों से निकलता रहे, रात भी हम्द पर ख़त्म हो। तुम

अन्दाज़ा नहीं कर सकते कि ज़िन्दगी कितने इत्मीनान व सुकून और कितनी ख़ुशी व मसर्रत से भर जाएगी और अल्लाह की नज़रों में ये ज़िन्दगी कितनी महबूब ठहरेगी।

"अगर तुम शुक्र करो तो उसे वह तुम्हारे लिए पसन्द करता है।"

(क़ुरआन, 39:7)

"आख़िर अल्लाह को क्या पड़ी है कि तुम्हें ख़ाहमख़ाह सज़ा दे. अगर तुम शुक्रगुज़ार बन्दे बने रहो और ईमान की रविश (तरीक़े) पर चलो।" (क़ुरआन, 4:147)

शुक्र व हम्द करो यहाँ तक कि अल्लाह राज़ी हो जाए। वह राज़ी हो जाए तो यह ऐसी कभी न ख़त्म होने वाली नेमत है कि जितना शुक्र करो, कम है।

लकल-हम्दु हत-त तरज़ा व लकल-हम्दु इज़ा रज़ी-त।

(12)

मौत यक़ीनी है

और याद रखो कि मौत से मुलाक़ात होनी है। किसी वक़्त भी बुलावा आ सकता है। बस सारी ज़िन्दगी इसी मुलाक़ात के लिए तैयारी का नाम है –

"हर व्यक्ति को देखना चाहिए कि उसने कल के लिए क्या भेजा है।" ...... "उसी की ओर तुम्हें पलटना है।" ...... "उसी की तरफ़ तुम जमा किए जाओगे।" ...... "उसी की तरफ़ जाना है।"

(क़ुरआन)

जितना उस मुलाक़ात के दिन को याद रखोगे, उतनी उस मुलाक़त की तैयारी के लिए क़ुव्वत पैदा होगी, जितनी उसकी तैयारी करोगे, उतनी हमेशा रहनेवाली कामयाबी तुम्हारा मुक़द्दर बनेगी।

(13)

अल्लाह की याद के मुख़्तलिफ़ तरीक़े

अल्लाह को याद करने के तरीक़े अनगिनत हैं। दिल में अल्लाह-अल्लाह करना, उसकी ख़ूबियों का तसव्वुर करना, यह याद करना कि वह मुझे देख रहा है। जिस-जिस तरह और जितना मुमकिन हो, ध्यान उसकी तरफ़ रखना और उसे ध्यान में रखना।

(14)

अज़कारे-इलाही

अल्लाह की याद के लिए वह तयशुदा (निश्चित) कलिमात, अज़कार, दुआएँ जिनकी तालीम नबी *(सल्ल.)* ने दी है, जितना ज़्यादा याद कर सको.....अरबी में न हो तो उर्दू/हिन्दी के मानी ही सही......उतना याद रखना और उनके पढ़ने का एहतिमाम करना। ख़ास तौर पर दुआ माँगने का ज़ौक़, शौक़ और सलीक़ा जितना सीख सको, ख़ासकर रात के आख़िरी हिस्से में। जब और जितनी अल्लाह तआला तौफ़ीक़ दे। चन्द लम्हे के लिए भी हो तो उसके सामने रोना और गिड़गिड़ाना, हाथ फैला देना, आह व ज़ारी करना। इन अज़कार का एक निश्चित कोर्स (निसाब) भी बना लेना। मेरा निसाब तो तुम्हें मालूम ही है। 'क़ुर्बे-इलाही' नामक किताब में दिया हुआ है।

(15)

क़ुरआन से बेइन्तिहा लगाव

क़ुरआन तो है ही ज़िक्र, नूर, रहमत, हिदायत और दिल में छिपी बीमारियों (छल, कपट, नफ़रत आदि) के लिए शिफ़ा (आरोग्य)। जितना

शौक़ और बेपनाह लगाव क़ुरआन से पैदा कर सकते हो, ज़रूर करो। जितना वक़्त क़ुरआन की सोहबत में गुज़ार सको, ज़रूर गुज़ारना। क़ुरआन न खोल सको तो उसका कुछ हिस्सा जो दिल में इकट्ठा हो उसे पढ़ने की आदत बनाना। इसमें क़ुरआन भी है, हम्द व तसबीह व तकबीर भी, तहलील (ला-इला-ह इल्लल्लाह कहना) व तफ़वीज़ (सुपुर्दगी) भी, दुआ भी, अल्लाह के नामों का विर्द (जाप) भी, मुलाक़ात की याद भी, दिल और ज़बान से ज़िक्र भी और जिस्मानी अंगों से ज़िक्र भी।

(16)

नमाज़

तमाम अज़कार का निसाब नमाज़ है। नमाज़ से हरगिज़ ग़फ़लत न करना। और हर नमाज़ अपनी हद तक, आजिज़ी और अल्लाह के ज़िक्र से लबरेज़, अदा करने की कोशिश करना। नमाज़ का मक़सद ही अल्लाह तआला की याद हैं। गिड़गिड़ाने की कोशिश करना कुछ मुश्किल नहीं। अपने ऊपर तवज्जोह रखो कि अल्लाह देख रहा है। अल्लाह पर, उसकी ख़ूबियों पर, ख़ाना काबा पर, ज़बान से निकलनेवाले अल्फ़ाज़ पर, इसपर कि ये मेरी आख़िरी नमाज़ है।

(17)

नमाज़ जमाअत के साथ

जमाअत की पाबन्दी का भी पूरा एहतिमाम करना। जमाअत के साथ पढ़ी गई नमाज़, बिना जमाअत के साथ पढ़ी गई नमाज़ से 27 दर्जे बेहतर है। और इशा की नमाज़ जमाअत से पढ़नेवाला ऐसा है जैसे वह आधी रात नमाज़ में खड़ा रहा, और फ़ज्र की नमाज़ पढ़नेवाला ऐसा है जैसे वह आधी रात नमाज़ में खड़ा रहा। बहुत-से उलमा के नज़दीक क़ुरआन की यह

आयत कि "रातों को कम ही सोते थे" उन लोगों के बारे में है जो इशा की नमाज़ जमाअत के साथ पढ़कर सोएं। अल्लाह ने तो हम जैसे गुनाहगारों के लिए क़ियामुल्लैल (रात को नमाज़ में खड़ा होने) के सवाब का रास्ता इतना आसान कर दिया है! फिर कितनी बदनसीबी होगी अगर तुम इसके बाद भी इस सवाब से महरूम रहो।

(18)

सब्र और दुआ के ज़रीए मदद माँगो

सब्र और दुआ के ज़रिए अल्लाह से मदद माँगते रहो। उसने चाहा तो हर काम आसान हो जाएगा, हर काम में कामयाब व बामुराद रहोगे। सब्र के बारे में वसीयत पहले कर चुका हूँ। उसके हासिल करने का नुस्ख़ा भी अल्लाह की याद और नमाज़ है। जहाँ भी अल्लाह तआला ने सब्र की ताकीद की है, उसके तुरन्त बाद ही, ज़िक्र, तसबीह, हम्द और नमाज़ की ताकीद भी की है। इन दोनों को जमा करके रखोगे तो दिल, तबीयत, काम, ज़िन्दगी सबसे इत्मीनान नसीब होगा।

(19)

इनफ़ाक़ (अल्लाह की राह में ख़र्च करना)

अल्लाह की बन्दगी, अल्लाह के बन्दों के साथ अच्छे ताल्लुक़ात, ये अल्लाह को सबसे बढ़कर महबूब व मतलूब है। इन ताल्लुक़ात में, अपने अख़लाक़ व मामलात में अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ रहना और करना......सबसे बढ़कर उसपर निगाह रखना, और उसके हासिल करने की कोशिश है। इसके लिए ज़रूरी है कि जो कुछ अल्लाह ने दिया है, वह उसकी ख़ातिर, उसके बन्दों पर ख़र्च करो – माल भी और वक़्त भी, तवज्जोह भी और-जज़्बात व एहसासात भी, तन-दिली भी और ग़ुस्सा भी,

अपनी आन-बान को भी और अपनी अना को भी। "जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं।" (क़ुरआन) देखो इसका नमाज़ से इतना गहरा ताल्लुक़ है कि जहाँ उसने नमाज़ की वसीयत की है वहाँ अल्लाह की राह में ख़र्च और ज़कात अदा करने की भी की है। जहाँ क़ियामुल्लैल और फ़ज्र के लिए उठने की ताकीद की है वहाँ माल व रिज़्क़ लुटाने की भी, जहाँ माफ़ी और दरगुज़र की तारिफ़ की गई है वहाँ तंगी और ख़ुशहाली में देने की भी। ईमान के साथ ग़रीबों को माल देने और खाना खिलाने को जोड़ दिया है –

> "तो जिसने (राहे-ख़ुदा में) माल दिया और (ख़ुदा की नाफ़रमानी से) परहेज़ किया, और भलाई को सच माना।"
>
> (क़ुरआन, 92:5, 6)

> "और फ़य्याज़ (अल्लाह की राह में ख़र्च करनेवाले) हैं और रात की आख़िरी घड़ियों में अल्लाह से मग़फ़िरत (माफ़ी) की दुआएँ माँगा करते हैं।" (क़ुरआन, 3:17)

> "जो हर हाल में अपने माल ख़र्च करते हैं चाहे बुरे हाल में हों या ख़ुशहाल, जो ग़ुस्से को पी जाते हैं और दूसरों के क़ुसूर माफ़ कर देते हैं।" (क़ुरआन, 3:134)

> "उनकी पीठें बिस्तरों से अलग रहती हैं, अपने रब को ख़ौफ़ और लालसा के साथ पुकारते हैं और जो कुछ रिज़्क़ हमने उन्हें दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं।" (क़ुरआन, 32:16)

> "रातों को कम ही सोते थे। फिर वही रात के पिछले पहरों में माफ़ी माँगते थे, और उनके मालों में हक़ था माँगनेवाले और महरूमों के लिए।" (क़ुरआन–51:17-19)

बस, इन आयतों को अपने दिल में बैठा लेना, निगाहों के सामने रखना, और उन ही के मुताबिक़ अपना अमल, अपना बर्ताव और अपना

किरदार बनाना। ये तुम्हें फ़ायदा पहुँचाएँगी। लेकिन इस तालीम में छिपी कुछ अहम बातों को भी अपने सामने ख़ास तौर पर रखना।

(20)

किसी को तकलीफ़ न पहुँचाना

किसी मख़लूक़ को ख़ास तौर पर किसी इनसान को, अपनी किसी बात या अमल (व्यवहार) से तकलीफ़ न पहुँचाना। जिस तरह अल्लाह के लिए हर काम करना सारे दीन का ख़ुलासा है, उसी तरह तकलीफ़ न पहुँचाना ख़ुदा के सारे हुक्मों का ख़ुलासा है। तुम जिस इस्लामी हुक्म पर ग़ौर करो उसमें यह उसूल किसी न किसी शक्ल में पाया जाता है। हुदूद (सीमाएँ) हों, निकाह व तलाक़ के हुक्म हों, लेन-देन के हों, आपसी रिश्तों के हों। इतनी छोटी-छोटी चीज़ों तक में यही हिदायत दी गई है कि किसी की कोई चीज़ मज़ाक़ में भी न छिपाओ। उसकी तरफ़ किसी हथियार से इशारा भी न करो, वह उठकर जाए तो उसकी जगह न बैठो, उसके सिर को फाँदते हुए आगे न जाओ, घर में न झाँको, जासूसी न करो, उसका ख़त बग़ैर इजाज़त के न पढ़ो, न छापो। रात में उठो तो इस तरह कि किसी के नींद में ख़लल न पड़े – ग़रज़ मैं कहाँ तक गिनवाऊँ। बस इसको एक तराज़ू और चिराग़ बना लो कि किसी को अपनी किसी बात या व्यवहार से तकलीफ़ नहीं पहुँचानी है। ख़ासकर तुम जो बात कहते हो, जो लफ़्ज़ तुम बोलते हो, उनमें तो बहुत बेएहतियाती होती है। ऐसी हर बात कहने से भी परहेज़ करो और ऐसे अमल से भी। सिवा इसके कि शरीअत के ही किसी अहम उसूल पर अमल करते हुए किसी को तकलीफ़ पहुँच जाए और उससे बचने की कोई सूरत न हो। फिर भी इस्तिग़फ़ार ज़रूर करना।

(21)

सारी मख़लूक़ अल्लाह का ख़ानदान है

इसका दायरा मुसलमान तक महदूद नहीं, मुसलमान भाई के लिए सिर्फ़ ख़ुसूसी ताकीद है। सारी मख़लूक़ अल्लाह का ख़ानदान है और जो इनके हक़ मे जितना अच्छा हो, उतना ही अल्लाह को ज़्यादा महबूब है। यहाँ तक कि इस मख़लूक़ में जानवर भी शामिल हैं। ऊँट को भूखा रखना, उसपर बर्दाश्त से ज़्यादा बोझ डालना, उसको आराम न देना, एक जानवर के सामने दूसरे जानवर को ज़िबूह करना, कुन्द (खोटी) छुरी से ज़िब्ह करना, चिड़िया से उसके बच्चे छीन लेना, चींटियों को आग में जलाना........इन सब चीज़ों से मना किया गया है। जब जानवरों का ये मामला है तो गुनाहगार मुसलमान हों या ग़ैर-मुसलिम, उनके क्या हुकूक़ हैं, तुम ख़ुद सोच सकते हो!

(22)

तकलीफ़ देने से बचना

तकलीफ़ देने की वजह से अगर किसी की जान, माल या इज़्ज़त को नुक़सान पहुँचता हो तो फिर यह बिलकुल हराम है। उसी तरह हराम है जिस तरह सूअर, शराब या सूद हराम है। रोज़े में खाने-पीने से रुक जाने का हुक्म है तो साथ ही माल को बातिल (अवैध) तरीक़े से खाना हर हालत में हराम किया गया है। खाने-पीने की चार चीज़ों को हराम क़रार दिया गया है तो इसी के साथ अल्लाह के हुक्मों को छिपाने और उन पर परदा डालने (अल्लाह के हुक्मों को छिपाना और उनपर परदा डालना उसके हुक्मों की खिलाफ़वर्जी से ज़्यादा बुरी बात है) को पेट में आग भरने के बराबर क़रार दिया गया है। हराम चीज़ों को मजबूरी में खा लेने की गुंजाइश तो हो सकती है लेकिन अल्लाह के हुक्म पर परदा डाल देने को मजबूरी नहीं

माना जा सकता। नाजायज़ माल खाने में, ग़ीबत में, तोहमत में, ज़ुल्म-ज़्यादती में मजबूरी के बहाने की कोई गुंजाइश नहीं। इसकी सज़ा सिर्फ़ आग ही नहीं बल्कि उससे बड़ी सज़ा यह है कि अल्लाह उनसे न बात करेगा, न उनको पाक (दोषमुक्त) करेगा।

ये हुक़ूक़ का मामला है। इससे माफ़ी नहीं सिवाए इसके कि जिसका हक़ मारा गया है वही माफ़ करे या अल्लाह उससे माफ़ी दिलवाने का रास्ता पैदा करे। बस अपने आप को बचाओ, अपने आप को बचाओ और कुछ हो जाए तो यहीं माफ़ करा लो। वरना क़ियामत के दिन मुफ़लिस और कंगाल रह जाओगे।

(23)

ज़बान की हिफ़ाज़त

सबसे बढ़कर अपनी ज़बान की हिफ़ाज़त करो। बस ज़बान के कारण सिर के बल जहन्नम में गिरने से बचने की तो मैंने एक ही राह पाई है। वह यह कि दूसरों के बारे में अपनी ज़बान बन्द रखो, सिवाय इसके कि कोई भली बात कह रहे हो। उनकी पीठ पीछे बुराई न करो, सामने कोई इल्ज़ाम मत रखो जो साबित न कर सको, बुरा-भला मत कहो। कहीं बुराई हो रही हो और फ़ौरन उठने या रोकने की ताक़त न हो, तो फ़ौरन इस्तिग़फ़ार शुरू कर दो। जायज़ ठहराने के लिए बहाना न करो। दूसरों में मियाँ-बीवी भी शामिल हैं, माँ-बाप और औलाद भी, सास-ससुर और बहू-दामाद भी, भाई-बहन भी, नौकर-चाकर भी, पड़ोसी भी, घर के पड़ोसी भी, थोड़े लम्हों के लिए पहलू का पड़ोसी भी, सफ़र में साथ के मुसाफ़िर भी। किसी से रिश्ता होने की वजह से गुनाह जायज़ नहीं हो जाता, बल्कि वह और सख़्त हो जाता है। बस हर इनसान के बारे में अपनी ज़बान बन्द रखो, अलबत्ता भली बात कहो। मेरी समझ में इसके अलावा नजात और ख़ुदा के यहाँ बख़शिश की कोई सूरत नहीं।

(24)

हक़ की अदायगी

किसी का हक़ मारने से आगे बढ़कर हुक़ूक़ की अदायगी की फ़िक्र करो, तकलीफ़ से बचाने से बढ़कर जो बेहतर सुलूक कर सको, जो ख़िदमत कर सको, जो ज़रूरत पूरी कर सको, वह करो। छोटी-छोटी नेकियों का जो अज्र (बदला) है, तुम्हें उसका अन्दाज़ा नहीं। किसी को सवारी (कार, बस, हवाई जहाज़) पर सवार होने में मदद देना, रास्ते से तकलीफ़ देनेवाली चीज़ें हटा देना, किसी के डोल में पानी डाल देना, किसी को इस्तेमाल की चीज़ दे देना, किसी को देखकर मुस्करा देना, किसी को इज़्ज़त से बैठाना, मुसलमानों की ज़रूरत पूरी करने के लिए निकलना, मसजिदे-नबवी में एतिकाफ़ (मसजिद में तयशुदा मुद्दत के लिए इबादत की ग़रज़ से एकांतवास होना) से ज़्यादा अफ़ज़ल है। जब तक तुम अल्लाह के किसी बन्दे की ज़रूरत पूरी करने या उसकी मदद करने में लगे रहोगे, अल्लाह तुम्हारी ज़रूरत पूरी करने और मदद में लगा रहेगा। तुम दुनिया में किसी की तकलीफ़ दूर करोगे, अल्लाह क़ियामत के दिन तुम्हारी तकलीफ़ दूर करेगा। तुम किसी का तन ढाँकोगे, अल्लाह क़ियामत के दिन तुम्हारा तन ढाँकेगा। भूखे को खाना खिलाओगे, बीमार की ख़बर लोगे, उसके पास अल्लाह को पाओगे।

(25)

आम बुराइयों से परहेज़

जो बुराइयाँ आम हैं, उनसे बचने की मैं तुम्हें ख़ास तौर पर ताकीद करता हूँ। किसी के अन्दर ऐब न निकालना, अपने ऐबों पर निगाह रखना। किसी की जासूसी करना हराम है, इस हराम में कभी न पड़ना। किसी के ऐब व गुनाह नज़र में आ जाएँ तो उनपर परदा डाल देना। पीठ पीछे बयान

करने का क्या सवाल, सामने बयान करके भी किसी को शर्म न दिलाना, न शर्मिन्दा करना। तुम्हें उससे कुछ हासिल न होगा, दूसरे का दिल दुखेगा। किसी पर सुबूत के बिना कोई इल्ज़ाम न लगाना। तोहमत और ग़ीबत को जमा न करना।

(26)

बुराइयों की जड़ें

इन हुक्मों के मुताबिक़ किरदार बनाने के लिए तुम्हें अपने दिल को कुछ बुराइयों से पाक करना होगा, जो बुराइयों की जड़ें हैं। पहली चीज़ ग़ुरूर व घमण्ड है। अपने को बेहतर समझना और दूसरों को कमतर समझना। ख़ाकसारी का तरीक़ा इख़तियार करो। जब तक क़ियामत के दिन अल्लाह तआला तुम्हें बरी न कर दे, क़बूल न कर ले, उस वक़्त तक तुम अपने बारे में कुछ भी नहीं कह सकते। अगर उसने तुम्हें रद्द कर दिया तो तुमसे ज़्यादा कमतर इनसान कौन होगा। इसलिए आज दुनिया के क़ैदख़ाने में ख़ुद को दूसरे मुजरिमों से बेहतर ख़याल करने से बड़ी बेवक़ूफ़ी क्या हो सकती है। जब तक सारे जहाँ के रब का फ़ैसला लागू न हो जाए, हर मुसलमान को अपने से बेहतर समझो। दूसरों की ख़ूबियों पर नज़र रखो, ऐबों पर नहीं। भलाइयों का ज़िक्र करो, बुराइयों का नहीं। अपने ऐबों को भी न खोलो और न अपने को गिराओ। लेकिन अल्लाह के सामने एक ज़लील व रुसवा ग़ुलाम की तरह रहो, उठो-बैठो, चलो-फिरो और बातें करो। गधे की तरह आवाज़ बुलन्द न करो। अकड़ और घमण्ड न दिखाओ। उस जिस्म पर क्या ग़ुरूर करना जिसे पीप (मवाद) और कीड़ों का चारा बन जाना है।

(27)

तंगदिली और कंजूसी

तंगदिली और कंजूसी से अपने दिल को पाक करो। जितना इस बात पर यक़ीन करोगे कि हर चीज़ अल्लाह की मिलकियत है। अगर आज किसी को दे दी तो कल बड़े बदले के साथ मिल जाएगी, आज रोक ली तो कल जान की आफ़त बन जाएगी। उतना ही दिल को बड़ा करना आसान होगा, जितना दिल में अल्लाह की बड़ाई समाएगी, दिल बड़े से बड़ा होता जाएगा। जितनी इसमें अपनी बड़ाई, अपनी हैसियत, अपनी आन, अपनी इज़्ज़त व ज़िल्लत, अपने हुक़ूक़ को न पाने का एहसास समाएगा, उतना ही तुम्हारा दिल भिंचता और सिकुड़ता चला जाएगा। आज माल दे दो, माफ़ी दे दो, ग़ुस्सा रोक लो, अपनी आन की हठ क़ुरबान कर दो, दुनिया की मुहब्बत को दिल से निकाल दो, अल्लाह तआला तुम्हारा दिल उतना बड़ा कर देगा। सुलूक इतना नरम और कुशादा कर देगा कि कल तुम इस जन्नत में दाख़िले के लायक़ होगे जिसके फैलाव में ज़मीन व आसमान समा जाएँ।

(28)

नरमी और मुहब्बत

दिल की नरमी मुहब्बत की गरमी और दर्द, रहमत की ठंडक और उसे हासिल करना .... ये सब भलाई के ख़ज़ाने हैं। दिल में नरमी होगी तो बात चीत में नरमी होगी। अल्फ़ाज़ में नरमी होगी, अंदाज़ में नरमी होगी, लेन-देन में नरमी होगी–

> ''नरमी को अपनाओ। जिसे नरमी न मिली उसे भलाई से मुकम्मल तौर पर महरूम कर दिया गया।''

मुहब्बत से सारे जहान को जीता जा सकता है। जो चीज़ नरमी से हासिल होगी सख़्ती से न होगी, जो कुछ मुहब्बत से हासिल होगा वह नफ़रत और दुश्मनी से नहीं – "अल्लाह ही के लिए दोस्ती, अल्लाह ही के लिए दुश्मनी" इससे ईमान मुकम्मल होता है। प्यारे नबी *(सल्ल.)* सारे जहाँ के लिए रहमत थे और हैं। मोमिनों के लिए नरम और मेहरबान हैं। ऊँची आवाज़ में बात करके, लेन-देन में सख़्ती करके, नथुने फुला के, तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। नरमी और मुहब्बत और रहमत से दिल को इत्मीनान और मिठास, दुनिया में आम तौर से सहूलत और आसानी और आख़िरत में अल्लाह की जन्नत यक़ीनी है।

(29)

गुनाहगारों से नफ़रत न करना

गुनाहगारों से नफ़रत न करना, बल्कि गुनाहों से करना। गुनाहगारों को डाँट-फटकार और लानत-मलामत करके उनके ख़िलाफ़ शैतान की मदद न करना, बल्कि उनके लिए इस्तिग़फ़ार और भलाई की दुआ करके शैतान के ख़िलाफ़ उनकी मदद करना। अपने गुनाहों पर निगाह रखोगे, क़ुरआन की उस आयत का विर्द (जाप) करते रहोगे, जिसमें कहा गया, "क्या तुम यह नहीं सोचते कि अल्लाह तुम्हें माफ़ कर दे" और इस बात को समझोगे कि "इनसान कमज़ोर पैदा किया गया है।" यह जानोगे कि हर आदमी की ज़िन्दगी नेकी और गुनाह से भरी हुई है और हर गरोह में नेक भी होते हैं और बुरे भी, तो तुम्हें अपने इर्द-गिर्द गुनाहगारों से इस तरह मामला करना आसान होगा, जिस तरह अल्लाह और उसके रसूल चाहते हैं। अपनी ग़लतियों और गुनाहों पर जितनी छूट अपने को देते हो उससे ज़्यादा छूट दूसरों को दो। अपने को जितना माफ़ी के लायक़ समझते हो उससे ज़्यादा दूसरों को समझो। जितनी सख़्ती अपने ऊपर करते हो उससे कम सख़्ती दूसरों पर करो। जितनी माँग ख़ुद से करते हो उससे कम और नरम माँग दूसरों से करो। इन्शा-अल्लाह इस रवैये में बड़ी भलाई पाओगे।

(30)

रिश्तेदारों के हुक़ूक़ अदा करना और रिश्तों को जोड़ना

रिश्तेदारों के हुक़ूक़ की अदायगी, नेक सुलूक, उनके साथ बेहतर बर्ताव, मेल-जोल, उनको याद रखना और याद कर लेना, उनके लिए अपने माल में एक हिस्सा रखना, ये बहुत बड़ी नेकी है, अल्लाह को बहुत महबूब है, ये सब करनेवालों से वह मुहब्बत करता है। शुरू ही में अल्लाह तआला ने गुमराह हो जानेवालों की निशानी बयान की है – "अल्लाह ने जिसे जोड़ने का हुक्म दिया है उसे काटते हैं।" (क़ुरआन–2:27) इसके बाद उनके साथ एहसान, उनपर ख़र्च करना, पड़ोसियों में क़रीबी रिश्तेदार पड़ोसियों और बेसहारा और यतीमों में भी क़रीबी रिश्तेदारों का ज़्यादा हक़दार होना। जगह-जगह इसकी ताकीद की गई है। इस हद तक कि हैरत होती है कि क़ुरआन पढ़नेवाला और क़ुरआन पर अमल करने का ख़ाहिशमंद इस बड़ी नेकी से कैसे ग़ाफ़िल हो जाता है। वक़्त में से, तवज्जोह में से, मुहब्बत में से, माल में से भी उनका हिस्सा निकालो। जब अल्लाह माल दे तो उसमें उनका हिस्सा न भूलो। रिश्तेदारों के साथ नेक सुलूक करोगे तो अल्लाह तुम्हारे रिज़्क़ में और तुम्हारी उम्र में बरकत देगा (बुख़ारी, मुसलिम)। क़ियामत के दिन भी अल्लाह की रहमत के हक़दार होगे। जब अल्लाह ने तमाम मख़लूक़ को पैदा कर दिया तो रहम ने हर रिश्ता तोड़नेवाले से पनाह माँगी। चुनांचे अल्लाह तआला ने यह एलान फ़रमा दिया कि जो तुझे जोड़ेगा (यानी रिश्तेदारियों को) उसको मैं (अपनी रहमत के साथ) जोड़ूँगा, जो तुझे काटेगा उसको मैं अपनी रहमत से काट दूँगा। (बुख़ारी, मुसलिम)

"क़रीब से क़रीब" का उसूल याद रखना, किसी को भूलना नहीं।

माँ-बाप, अपने घरवाले, अपने भाई-बहन, अपने चचा-मामू, फूफी-ख़ाला, इसी तरह एक के बाद एक। फिर माँ-बाप के दोस्त व अहबाब, उनसे मुहब्बत करनेवाले, फिर मेहमान और पहलू के साथी। ख़ास तौर पर नबी *(सल्ल.)* के उस इरशाद को याद रखना कि "सबसे बड़ी नेकी अपने बाप के दोस्त और महबूब और चाहनेवालों के साथ ताल्लुक़ रखना है।"

(31)

तनक़ीद और इख़तिलाफ़े-राय को बर्दाश्त करना

इख़तिलाफ़ को बर्दाश्त करना। इख़तिलाफ़े-राय (मतभेद) और तनक़ीद से ताल्लुक़ में फ़र्क़ न आने देना। तनक़ीद को सब्र व नरमी और फ़राख़दिली और बुलन्द हौसले के साथ सुनना, अच्छी बात को क़बूल करना, ग़लत बात को नज़र-अंदाज़ कर देना।

अपनी ग़लती की ज़िम्मेदारी क़बूल करने में किसी बुज़दिली का शिकार न होना, न किसी ग़लती के मान लेने में कंजूसी करना, न किसी पर तनक़ीद व एतिराज़ करने में फ़ैयाज़ बनना, न किसी की तारीफ़ करने में कंजूसी बरतना।

कोई मुँह पर बुरा-भला कहे तो वह ख़ुद को ही बुरा-भला कह रहा है, तुम क्यों ग़ुस्सा करो। कोई पीठ पीछे बुरा-भला कहे तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है। तुम जवाब न दोगे तो फ़रिश्ते तुम्हारी तरफ़ से जवाब देंगे। तुम ग़ुस्सा, इंतिक़ाम, ज़िल्लत व इज़्ज़त के चक्कर में फँस जाओगे तो और दस गुनाहों में मुब्तला होगे। ख़ामोश रहोगे तो फ़रिश्तों की मदद के अलावा, बुरा-भला कहनेवालों की नेकियाँ भी तुम्हें मिलेंगी। तुम्हें तो इमाम अबू-हनीफ़ा *(रह.)* की तरह उसे तोहफ़ा भेजना चाहिए, न कि तुम ग़ुस्से और इंतिक़ाम की आग में ख़ुद को जलाना शुरू कर दो।

एतिराज़ करनेवालों को जवाब देने के चक्कर में भी न पड़ना,

ख़ासकर सबके सामने। हर एतिराज़ करनेवाले की बात पर ठण्डे दिल से ग़ौर कर लेना। वे कोई सही बात कहें तो अपना सुधार कर लेना। अगर ग़लत लिखा है तो माफ़ करने में तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा, इज़्ज़त में कोई कमी नहीं आएगी, तल्ख़ी न बढ़ेगी, दिल जीतने की मिठास हिस्से में आ सकती है। लोगों के साथ एतिराज़ और एतिराज़ के जवाब में उलझने से ज़्यादा फ़िज़ूल और कोई काम नहीं। यह न करोगे तो वक़्त बचेगा। वही वक़्त भलाई और भलाई के हासिल करने में लगा देना।

ख़ानदान में, घर में, दोस्तों में, पड़ोस में, कारोबार में, दीनी जमाअती ज़िन्दगी में.......हर जगह इन उसूलों पर अमल करोगे तो इत्मीनान व सुकून की मिठास पाओगे। नहीं करोगे, तो रंज व ग़म में मुब्तला होगे। मुख़ालिफ़ों के तकलीफ़ पहुँचाने पर उन्हें माफ़ कर देने से ज़्यादा लज़ीज़ कोई बात नहीं। और जब हर काम अल्लाह के लिए करना शुरू कर दोगे तो तुम्हें पता चलेगा कि ये तो बड़ा आसान काम है।

(32)

हक़ीक़ी नस्बुलऐन

इस दुनियावी ज़िन्दगी में हमेशा अपनी नज़रें अल्लाह के दीन की दावत व इक़ामत के नस्बुलऐन पर जमाए रखना, इसी को आख़िर दम तक अपना हद्‌फ़ (लक्ष्य) व मक़सूद रखना। किसी दूसरे मक़सद को इस मक़सद पर और किसी दूसरी दिलचस्पी को इस दिलचस्पी पर ग़ालिब न आने देना, ख़ासकर दुनिया को।

एक आदमी भी अगर तुम्हारी वजह से एक नेक काम करने लगे तो इससे बड़ा सदक़ा-ए-जारिया और कोई नहीं हो सकता। और अगर वह ख़ुद ही नेक काम न करे, बल्कि उसकी तरफ़ दूसरों को भी बुलाए, दूसरों को भी इस काम से लगाए तो फिर इस सवाबे-जारिया में कई गुना इज़ाफ़ा

हो जाएगा। ये नेक काम अगर दावत का काम हो, इक़ामते दीन की जिद्दोजुहद का काम हो, अल्लाह के कलिमे को बुलन्द करने का काम हो, अल्लाह के हुदूद को जारी करने और नबी *(सल्ल.)* की सुन्नत को ज़िन्दा करने का काम हो, तो फिर "बढ़ौत्री पर बढ़ौत्री" वाला हाल होगा, और इसके अलावा "हमारे पास और भी है" की बशारत भी पूरी होगी। किसी नेकी को हक़ीर न जानो, न किसी बुराई को कम समझो। आमाल के रुतबे को समझो, और उनके मुताबिक़ काम करो। नवाफ़िल की कोई मिक़दार भी एक फ़र्ज़ के बराबर नहीं हो सकती। सारे फ़राइज़ को अदा करना ज़रूरी समझना। उसमें चोटी का फ़र्ज़ यह है कि अल्लाह की राह में मुसलसल जिद्दोजुहद की जाए। शैतान के इस फ़रेब में न आना कि बड़े-बड़े मुनाफ़े को छोड़कर कम मुनाफ़े में मशग़ूल हो जाओ। इस फ़रेब में भी न आना कि ज़रीओं में इस तरह फँस जाओ कि मक़सूद गुम हो जाए। यह इसी लिए कर रहे हैं कि असल मक़सद के लिए बेहतर काम कर सकें, और उसका वक़्त फिर कभी न आता। इस फ़रेब में भी न आना कि पहले अपनी इसलाह कर लें, फिर ये काम करेंगे। पहले इल्म हासिल कर लें, पहले क़ौल व फ़ेल की दोरंगी (कथनी और करनी का फ़र्क) दूर कर लें, फिर करेंगे। याद रखो कि ऐसा वक़्त कभी न आएगा। इस फ़रेब में भी न आना कि अच्छा कल से करेंगे, ज़रा इस काम से फ़ारिग़ हो लें, फिर करेंगे। इसकी नौबत भी कभी न आएगी।

मायूसी के कैंसर से अपने आपको बचाना। आजकल के हालात में यह सबसे आम बीमारी है। दुनिया में आगे बढ़ने के लिए बेहतरीन तदबीरें अपनाना, तुम्हारी अक़्ल पर अल्लाह तआला का हक़ है। हार व शिकस्त हो, लोग न मानें, न साथ दें तो इसकी वजहों का पता लगाना और इनका इलाज करना भी दीनी ज़िम्मेदारी है। ज़्यादा से ज़्यादा लोग आएँ, जल्द से जल्द आएँ, जल्द से जल्द कामयाबी हो, दीन ग़ालिब हो, इन तमन्नाओं की असल ज़रूरत है। लेकिन एक फ़र्द की हैसियत से तो तुम्हारी आरज़ू

सिर्फ़ एक ही होनी चाहिए, वह यह कि तुम कोशिश का हक़ अदा कर दो और जन्नत के हक़दार ठहरो। तुम्हें इसके अलावा और किसी चीज़ की चाह नहीं होनी चाहिए।

राहे-ख़ुदा में जिद्दोजुहद के साथ-साथ अपने दिल को शहादत की आरज़ू से भी आबाद व शादाब रखना। जब तक अल्लाह तआला सिर को क़ुरबान कर के शहादत देने की मंजिल और तौफ़ीक़ से सरफ़राज़ न करे, उस वक़्त तक माल से, अमल से, दावत से, तक़रीर से, तहरीर से शहादत में कोई कोताही न करना। इस शहादत में अपना हिस्सा न खोना।

(33)

जमाअती ज़िन्दगी

राहे-ख़ुदा में जिद्दोजुहद के लिए जमाअती ज़िन्दगी ज़रूरी है। अपनी इसलाह व तर्बियत के लिए भी, राहे-ख़ुदा में डटे रहने के लिए भी। जमाअती ज़िन्दगी का दामन अपने हाथ से कभी न छोड़ना। न जमाअती ज़िन्दगी के उसूलों व आदाब का, जिनसे न सिर्फ़ जमाअत मज़बूत होती है, बल्कि तुम भी जमाअत से बहुत कुछ हासिल करोगे। मक़सद से वाबस्तगी, इनसानों को जोड़ना, और उनके साथ जुड़े रहना, सुनने और फ़रमांबरदारी और इनके हुदूद व आदाब, मशविरे के उसूल, वक़्त की पाबंदी, ज़िम्मेदारी की अदाएगी, नसीहत व ख़ैरख़ाही.....ये सिर्फ़ चंद चीज़ें हैं।

जमाअती ज़िन्दगी में ऐसे हालात भी आते हैं कि मायूसी की कैफ़ियत होती है। अगर कभी ऐसा हो तो जमाअत का दामन न छोड़ना। अल्लाह ने वक़्त दिया और लिखने की तौफ़िक़ मिली तो मैं अपनी कहानी या अपनी डायरी लिखकर जाऊँगा। इससे तुम्हें मालूम होगा कि 1970 ई. के बाद इख़तिलाफ़, मायूसी और इसमें रोज़-बरोज़ के इज़ाफ़े के बावजूद मैंने

किसी तरह वफ़ादारी और इसतिक़ामत (जमाव) के साथ अहदे-वफ़ा को पूरा करने के तक़ाज़े निभाए। कुछ तो इख़तिलाफ़ और मायूसी की पहली ही आँच में पिघल गए।

(34)

हिक्मत की दौलत

अपनी ज़िन्दगी में इक़ामते-दीन (दीन को क़ायम) करते हुए, या दूसरों की ज़िन्दगी और समाज में ये फ़रीज़ा अदा करते हुए, हिकमत की दौलत से कभी लापरवाही न बरतना। इस बारे में हिक्मते-दीन के मौज़ू (विषय) पर मैं अपनी तक़रीर और अक्टूबर से दिसम्बर 1996 ई. के 'तर्जुमानुल-क़ुरआन' के इशारात ख़ास तौर पर पढ़ने की ताकीद करूँगा। इस हिकमत में दर्जा-बदर्जा का उसूल, बारीक-बीनी और सख़्ती से परहेज़ करना, दोनों की पाबन्दी बहुत अहम है। कम अहम मसलों, अगर-मगर और बहसो-मुबाहिसे से परहेज़ करना। आम लोगों से ग़ैर-ज़रूरी कशमकश और नाराज़ी हरगिज़ मोल न लेना। उनके मुख़्तलिफ़ ख़यालात और ग़लतियों की भी अच्छी तावील (स्पष्टीकरण) करना। इनकी राह से न हटना, सिवाय यह कि अल्लाह की नाफ़रमानी हो रही हो। हराम-हलाल का लफ़्ज़ इस्तेमाल करने में बहुत ज़्यादा एहतियात बरतना, बल्कि जहाँ तक हो सके परहेज़ ही करना कि अगले ज़माने के लोगों का तरीक़ा यही था।

(35)

हर चीज़ को अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ बनाना

घर, अपना घर, तुम्हारे इख़्तियार में है। इस घर में अल्लाह के कलिमे को ग़ालिब रखना, अल्लाह की हुकूमत क़ायम करना, उसे

अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ बनाना और चलाना तुम्हारा सबसे बड़ा अहम काम होना चाहिए। अपनी ज़ात के बाद तुमसे उन्हीं चीज़ों के बारे में सवाल और जवाब-तलबी होगी जो तुम्हारे इख़तियार में हैं। इनमें सबसे अहम तुम्हारा घर है। घर की इसलाह तुम्हारी ज़ात की इसलाह पर मुनहसिर है और तुम्हारी अपनी इसलाह घर की इसलाह पर। घर अल्लाह की मरज़ी के मुताबिक़ चलेगा तो तुम्हें इत्मीनान व सुकून की ढेरों दौलत नसीब होगी। आज कोई घर बाहर से आनेवाले असरात से महफ़ूज़ नहीं हो सकता। फिर भी तुम्हारी कोशिशों से बहुत कुछ हो सकता है।

"बचाओ अपने आपको और अपने घरवालों को आग से।"

(क़ुरआन 66:6)

यह घर की ज़िन्दगी के लिए रहनुमा उसूल हो। घर चलाने और घर में आपसी तल्लुक़ात में यही रूह जारी व सारी और काम करती हो। घर का साज़ो-सामान हो, घर का खाना-पीना हो, बच्चों की तालीम हो, उनकी तर्बियत हो, उनके शौक़ हों, उनका मुस्तक़बिल (भविष्य) हो, मियाँ-बीवी का ताल्लुक़ हो, बच्चों के साथ बर्ताव हो, मुलाज़िमों के साथ सुलूक हो .... यही पेशे-नज़र रखना कि कोई बात ऐसी न हो जो अल्लाह की आग का मुस्तहिक़ बनाए। जितना तुम इसपर नज़र रखोगे, इसका एहतिमाम रखोगे, उतना घर की ज़िन्दगी जन्नत बनेगी, और जन्नत के हासिल करने का ज़रीआ साबित होगी

इसके ये मानी नहीं कि जहन्नम की आग के बारे में सोचते रहने से घर दुनिया के मज़ों और तफ़रीहों से ख़ाली हो जाएगा। नहीं, बल्कि इसके बावजूद सुकून और मुहब्बत भी होगी, आपसी प्यार भी हासिल होगा, मुनासिब ज़ीनत का सामान भी होगा.....इसलिए कि ये सब अल्लाह की आग से बचने के लिए ज़रूरी है।

कोई दो इनसान एक जैसे नहीं होते। जब एक जगह हरदम रहना हो

तो खटपट, नाराज़ी और इख़तिलाफ़ से बचने का कोई रास्ता नहीं। लेकिन शौहर यह याद रखे कि रसूल *(सल्ल.)* अपने घर में कैसे शौहर थे, आपने इस बारे में क्या हिदायतें दी हैं, औरतों की दिल जोई को उनका हक़ क़रार दिया है। सफ़र में जाते तो किसी को साथ ले जाते। रोज़ाना उसके साथ वक़्त गुज़ारने का एहतिमाम करते। उनके हँसी-मज़ाक़ में शरीक होते। उनको तफ़रीह (सैर) भी कराते। उनके साथ दौड़ भी लगाई। और फ़रमाया–

> ''ईमान में कामिल (मुकम्मल ईमानवाले) वे हैं जो अच्छे अख़लाक़ रखते हों, और तुममें सबसे अच्छे वे हैं जो अपनी औरतों के लिए अच्छे हैं।'' (तिरमिज़ी)

शौहरों ने औरतों को तंबीह की तो नबी *(सल्ल.)* की बीवियों के पास औरतें ढेरों शिकायतें लेकर पहुँच गईं। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया –

> ''बहुत सारी औरतें अपने शौहरों की शिकायत करने मेरी बीवियों के पास आई हैं। ऐसे लोग तुममें अच्छे लोग नहीं हैं।'' फ़रमाया : ''औरतों से नरमी और ख़ैर का बर्ताव करो।'' फ़रमाया : ''कोई मोमिन मर्द किसी मोमिन औरत को नापसन्द न करे। अगर उसकी कोई आदत नागवार है, तो कोई दूसरी ऐसी भी होगी जो उसे अच्छी लगे (और यही मामला मर्दों के हवाले से औरतों के लिए भी है)।''

टूटी उम्मीदों और ख़ुशामद और अपने को गिराने पर आमादा न होना, यही ताल्लुक़ात की ख़राबी की असल वजह हैं।

बच्चों की इज़्ज़ते-नफ़्स का ख़याल रखना, लेकिन उनकी तर्बियत में कोई कमी न करना। याद रखना कि बच्चों से बढ़कर दुरंगी (कथनी कुछ, करनी कुछ) को पहचाननेवाला और कोई नहीं होता। इसलिए घर में तुम और कुछ करो न करो, क़ौल व अमल की दुरंगी से ख़ुद को ज़रूर बचाना।

बच्चों को आदाब की तालीम ज़रूर देना। सलाम व मुलाक़ात के, बड़ों की ख़िदमत व एहतिराम के, मेहमानों की मेज़बानी के, खाने-पीने के और ऐसे ही दूसरे आदाब।

मेरी तमन्ना थी कि बच्चों के बच्चे पहले क़ुरआन ख़त्म करें। क़ुरआन से मुहब्बत और ताल्लुक़ उनके दिलों में बैठ जाए। वे अँग्रेज़ी स्कूलों में न जाएँ। इस उम्र में उनकी याद्दाश्त की पट्टियों पर बा-बा-ब्लैक शीप के गाने न नक़्श (अंकित) हों। क़ुरआन की आयतें, प्यारे नबी *(सल्ल.)* की हदीसें, नात, इक़बाल व हाली जैसे शायर के कलाम, दीनी अदब के उमदा टुकड़े नक़्श हों। यह सब तो न हो सका। बस अब कम से कम क़ुरआन और दीनी अदब की तालीम जितनी दे सको और इस तरह दे सको कि उनकी अहमियत और मुहब्बत भी दिल में बैठती जाए तो मेरी रूह को बहुत ख़ुशी होगी।

मैं टी. वी. के हराम होने का फ़तवा नहीं देता। लेकिन ख़ुदा के लिए अपने घरों को इस लानत और गन्दगी से पाक रखना, नंगी तस्वीरों और रिसालों (पत्रिकाओं) और किताबों से भी। घर की फ़ज़ा को जितना पाकिज़ा बना सको और रख सको, उतना ज़रूर बनाना और रखना।

घर में बाक़ायदा इजतिमा हो सके तो अच्छा है, रोज़मर्रा के कामों में अल्लाह की याद और भलाइयों की तलक़ीन और बुराइयों से परहेज़ की नसीहत को ज़रूर समोना। बहादुरी के क़िस्से भी सुनाना।

(36)

आख़िरत का एहसास और अल्लाह की तरफ़ रुजू

जिन-जिन बातों की मैंने वसीयत की है, उनपर अमल करने के लिए तुम्हें क़ुव्वत व क़ाबिलीयत की ज़रूरत होगी। इस क़ुव्वत का सरचश्मा यह यक़ीन, इस बात का धड़का और उस वक़्त की तैयारी है

कि.......अल्लाह के पास जाना है और उससे मुलाक़ात करनी है। असूल कामयाबी वहीं की कामयाबी है, असूल ज़िन्दगी वही है। तुमको एक बार इस बात का फ़ैसला करना है, करना चाहिए और जितना जल्द कर लो उतना अच्छा है कि तुम्हें हर काम इसी लिए करना है, हर पल इसी तरह गुज़ारना है, हर पैसा इसी लिए ख़र्च करना है, हर ताल्लुक़ इसी तरह करना है कि वह आख़िरत में तुम्हारे काम आए। "और हर शख़्स यह देखे कि उसने कल के लिए क्या सामान किया है" (क़ुरआन, 59:18)। अक्सर लोग दो कश्तियों पर सवार होकर चलने की कोशिश करते रहते हैं, दोनों ही में नुक़सान उठाते हैं। तुम फ़ैसला कर लो कि दुनिया की पूरी ज़िन्दगी से तुम्हें आख़िरत और सिर्फ़ आख़िरत कमाना है। दुनिया कमाना है तो वह भी इसी लिए कि उससे आख़िरत कमाना है।

"जो समझते हैं कि उसे आख़िरकार अपने रब से मिलना और उसी की तरफ़ पलटकर जाना है" (क़ुरआन, 2:46) में तुम शामिल हो जाओगे। तुम्हें आजिज़ी (नम्रता) हासिल होगी, (आजिज़ी न हो तो ऊँचे से ऊँचा इल्म भी बेकार है)। आजिज़ी हासिल होगी तो सब्र और नमाज़ की राह आसान होगी, और ये दोनों ही दीन और दुनिया की तमाम भलाइयों की कुँजियाँ हैं।

तक़्वा जो कामयाब ज़िन्दगी का उनवान (शीर्षक) है, इसका राज़ भी इसी फ़ैसले और इसपर डटे रहने में छिपा हुआ है कि आख़िरत की चाह है। दुनिया की हर दिलचस्पी और हर काम से आख़िरत ही कमाना है। इसी को हर वक़्त निगाह में रखना। फिर तक़्वा हासिल होगा, आसमान और ज़मीन से बरकतें नाज़िल होंगी, हर अज़ाब से नजात का रास्ता मिलेगा। रिज़्क़ इस तरह और ऐसे ज़रीओं से मिलेगा कि सोचा भी न होगा, हर काम में आसानी होगी और तुम जन्नत के वारिस होगे। इस मक़सद के लिए मौत और आख़िरत की मंजिल को हमेशा याद करना।

(37)

ग़ैब पर ईमान

आख़िरत के लिए इरादा, इसको निशाना और मक़सद बनाना और इसके लिए कोशिश, जैसा कि इस इरादे का हक़ है – यह उसी वक़्त हासिल होगा जब तुम ग़ैब पर ईमान की नेमत हासिल करोगे । अल्लाह हो या आख़िरत, दोनों ही ग़ैब में हैं। वे हक़ीक़तें जो सोच के बाहर हैं, दिल व दिमाग़ से परे हैं, उनपर ईमान व यक़ीन से ही तुम्हारे आख़िरत के इरादे और उसकी कोशिश में पुख़्तगी और क़ुव्वत हासिल होगी। जन्नत और दोज़ख़ तुम्हारे सामने नहीं, इसके बग़ैर ही एक की चाह और लालच और दूसरे की नफ़रत और ख़ौफ़ तुम्हें हासिल हो। रहमान को भी तुमने देखा नहीं, लेकिन उसपर भी ईमान रखो और उसका डर और ख़ौफ़ अपने दिल में पैदा करो।

(38)

ख़ुदा और रसूल *(सल्ल.)* से मुहब्बत

ईमान की मिठास पाने के लिए अल्लाह और उसके रसूल *(सल्ल.)* से मुहब्बत को दिल में बसाओ। इनसे मुहब्बत होगी तो ईमान रग-रग में उतर जाएगा, दिल की गहराइयों में जगह बनाएगा। अल्लाह तआला ने फ़रमाया है–

> ''और जो लोग ईमान लाए हैं वो सबसे बढ़कर अल्लाह को महबूब रखते हैं।'' (क़ुरआन, 2:165)

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया हैः

''तुम सही मानो में उस वक़्त तक पूरी तरह मोमिन नहीं हो सकते

जब तक मैं तुम्हें दुनिया की हर चीज़ से बढ़कर महबूब न हो जाऊँ।''

इस मुहब्बत को जान लेना कोई मुश्किल काम नहीं। तुममें से हर एक मुहब्बत के मज़े से वाक़िफ़ है। उसके क़रीब जाने की बेताबी, उसका नाम लेने में लज़्ज़त, उसके ज़िक्र और बार-बार ज़िक्र की ख़ाहिश, उसकी मुहब्बत की जुस्तजू, उसकी नाराज़ी का ख़ौफ़ ......बस यह देखते रहो कि यह कितना हासिल है। दिल में झाँककर देखो कि वहाँ अल्लाह का क्या मक़ाम है। बस वही मक़ाम तुम्हारा अल्लाह के यहाँ होगा।

इस मुहब्बत के हासिल करने का नुस्ख़ा भी बहुत आसान है। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की पैरवी, आप *(सल्ल.)* के नक़्शे-क़दम पर चलना, आप की तरह ज़िन्दगी गुज़ारना, आप *(सल्ल.)* के रंग में रंगना, उन्हीं मक़सदों का महबूब होना जो आप *(सल्ल.)* को महबूब थे, उन्हीं राहों पर चलना जो आप *(सल्ल.)* को महबूब थीं।

''ऐ नबी *(सल्ल.)* लोगों से कह दो, अगर तुम हक़ीक़त में अल्लाह से मुहब्बत करते हो तो मेरी पैरवी इख़तियार करो, अल्लाह तुमसे मुहब्बत करेगा।'' (क़ुरआन, 3:31)

इसके लिए दुआ माँगते रहो--

''ऐ अल्लाह ! मैं तुझसे तेरी मुहब्बत माँगता हूँ, और उसकी मुहब्बत मांगता हूँ जो तुझसे मुहब्बत करता है और हर उस अमल की मुहब्बत माँगता हूँ जो मुझे तेरी मुहब्बत से क़रीब ले आए।''

''ऐ अल्लाह : मुझे मेरे पूरे दिल से अपने से मुहब्बत करनेवाला बना दे और मैं अपनी सारी कोशिशें तुझे राज़ी करने में लगा दूँ।''

''ऐ अल्लाह ! मेरे दिल की सारी मुहब्बत अपने लिए कर दे, और मेरी सारी कोशिशें तेरी रिज़ा के लिए हों।''

अल्लाह की नेमतों को कसरत से याद करो, उसके एहसानों को याद

करो, उनका ज़िक्र करो, जितना कर सको। हर क़िस्म की नेमतें, आम भी और ख़ास भी, हक़ीक़ी भी, रूहानी भी और माद्दी (भौतिक) भी, छोटी भी और बड़ी भी।

(39)

इस्तिग़फ़ार

कितनी भी कोशिश करो, यह याद रखना कि गुनाहों से बचना मुमकिन नहीं। "तुम सब गुनाहगार हो, ख़ताकार हो" (क़ुरआन)। अगर तुम गुनाह न करते तो अल्लाह दूसरी मख़लूक़ पैदा करता। उनको इख़्तियार की आज़ादी देता। वे गुनाह करते, इस्तिग़फ़ार करते, फिर वह उनको माफ़ कर देता। इसलिए अपने गुनाहों से हिम्मत न हारना, हौसला न खोना, मायूसी के फंदे में न फँसना, इस्तिग़फ़ार करना और अपने रब की बताई हुई राह पर चलते रहना।

उसकी मेहरबानी और रहमत का हाथ हर वक़्त फैला हुआ है। वह ख़ुद बुलाता है कि आओ और गुनाह बख़्शवाओ।

सुबह को बुलाता है कि रात के गुनाहगार आएँ, शाम को हाथ फैलाता है कि दिन के गुनाहगार आएँ, इस्तिग़फ़ार करें ताकि वह उनको बख़्श दे।

इस्तिग़फ़ार में जल्दी करना। गुनाह होते ही हाथ फैला देना, दिल पर से दाग़ धुल जाएगा और वह चमक उठेगा। अँधेरा छँट जाएगा, रौशनी हो जाएगी। जो ईमान दिल से निकल गया होगा, वह वापस आ जाएगा। इन चीज़ों में देर न लगनी चाहिए।

बार-बार इस्तिग़फ़ार करना। प्यारे नबी *(सल्ल.)* दिन में 100 बार से ज़्यादा इस्तिग़फ़ार करते थे। एक ही गुनाह बार-बार हो, बार-बार इस्तिग़फ़ार करना। गुनाह का बार-बार होना तुम्हें इस्तिग़फ़ार से आजिज़

न करे। बार-बार गुनाह करना और बार-बार इस्तिग़फ़ार करना, गुनाह पर इसरार (आग्रह) की तारीफ़ में नहीं आता। गुनाह ढिठाई से करना, उसके बाद नहीं पछताना, उसके लिए बहाने बनाना, जायज़ ठहराना– ये चीज़ें गुनाह पर इसरार की तारीफ़ में आती हैं। इनसे अल्लाह तआला नाराज़ होता है।

गुनाह के बाद आँसू बहा लेना, इसमें कमी न करना। कुछ तलाफ़ी (भरपाई) और कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) भी अपने ऊपर आइद करना, कुछ सदक़ा माल का, किसी के लिए बख़शिश व माफ़ी कुछ रकआत नमाज़ की।

तौबा और इस्तिग़फ़ार में जल्दी करनी चाहिए, इसका दरवाज़ा हर वक़्त खुला है। लेकिन इसका बेहतरीन वक़्त फ़ज़्र से पहले का है। चंद लम्हों के लिए ही तौफ़िक़ हो, पेशानी टेककर, आँसू बहाकर इस्तिग़फ़ार करना, और ज़रूर करना।

बन्दों के हक़ अदा करने के मामले में गुनाह हो तो शर्मिन्दगी और इस्तिग़फ़ार के साथ हक़ों की अदायगी, नुक़सान की तलाफ़ी (भरपाई) और माफ़ी भी ज़रूरी है।

इस्तिग़फ़ार से न सिर्फ़ मग़फ़िरत का दरवाज़ा खुलेगा जो जन्नत में दाख़िल होने के लिए ज़रूरी है– "दौड़कर चलो उस राह पर जो तुम्हारे रब की बख़्शिश और उसकी जन्नत की तरफ़ जाती है, जिसका फैलाव ज़मीन और आसमानों जैसा है" (क़ुरआन, 3:133) – बल्कि, दुनिया की ख़ुशहाली, मसलों का हल और तंगी में ख़ुशहाली नसीब होगी।

(40)

अमल का बदला

आख़िरी बात यह कहूँगा कि जो कुछ अल्लाह की रहमत मिलेगी, मग़फ़िरत मिलेगी, नेमत मिलेगी, हमेशा क़ायम रहनेवाली राहत मिलेगी,

रब की ख़ुशनूदी मिलेगी, वह तुम्हारी अपनी कोशिश से मिलेगी, अपनी मेहनत से मिलेगी, कुछ करने से मिलेगी। जो इनाम हैं वह मेहनत का, अमल का, कोशिश का है।

> "फिर जैसा कुछ आँखों की ठंडक का सामान उनके आमाल (कर्मों) के बदले में उनके लिए छिपा रखा गया है उसकी किसी को ख़बर नहीं है।" (क़ुरआन, 32:17)

> "और यह कि इनसान के लिए कुछ नहीं है, मगर वह जिसकी उसने कोशिश की है।" (क़ुरआन, 53:39)

> "फिर उसका पूरा बदला उसे दिया जाएगा।" (क़ुरआन, 53:41)

ज़िन्दगी सबसे क़ीमती चीज़ है। तुम इसकी ज़िम्मेदारी संभालो, जिस तरह दुकानदार अपनी दुकान की, कारोबारी अपने कारोबार की और किसान अपने खेत की ज़िम्मेदारी संभालता है। बाग-डोर अपने हाथ में लो, माल हासिल करो, बीज डालो, सुबह वक़्त पर दुकान खोलो, शाम को वक़्त पर बन्द करो, रोज़ का हिसाब कर लो, जब तुम ख़ुद को और अपनी ज़िन्दगी को बनाने-सँवारने के लिए आगे बढ़ोगे, इसकी धुन तुमपर सवार हो जाएगी, इसी के लिए काम करोगे तो अल्लाह ख़ुद तुम्हारी तरक़्क़ी की राहें खोलता जाएगा, यह उसकी बात है।

> "जो लोग हमारी ख़ातिर कोशिश करें, उन्हें हम अपने रास्ते दिखाएँगे।" (क़ुरआन, 29:69)

उसको दो ही चीज़े चाहिएँ – (1) इरादा; (2) कोशिश। दोनों ईमान के साथ। फिर उसकी तरफ़ से क़द्रदानी और करम करने में कमी न पाओगे–

> "और जो आख़िरत का ख़ाहिशमंद हो और उसके लिए कोशिश करे जैसी कि उसके लिए कोशिश करनी चाहिए, और हो वह मोमिन, तो ऐसे हर शख़्स की कोशिश क़ाबिले-क़द्र होगी।"
> (क़ुरआन, 17:19)

अपने आमाल से डरते रहो, अल्लाह से डरो। जो रहमान व रहीम है। उसकी रहमत और वादों की सच्चाई पर यक़ीन रखो। उससे उमीदें लगाए रखो। ख़ौफ़ और लालच के साथ उसे पुकारो। और इस बात का विर्द (जाप) करते रहो कि :

"वह मोमिनों पर बहुत मेहरबान है।"

अपने मुस्तक़बिल के बारे में सोचता हूँ तो उम्मीद और अंदेशे की कैफ़ियत है, ख़ौफ़ ग़ालिब है। अल्लाह के लिए नामुमकिन नहीं कि आख़िरी वक़्त आने तक उम्मीद ग़ालिब हो जाए। अपने बुरे कारनामों पर अफ़सोस और पछतावा है, शर्मिन्दगी है। साबिक़ून (गुज़रे हुए लोग) और मुक़र्रबून (जिन्हें अल्लाह की क़ुरबत हासिल होगी) का ज़िक्र पढ़ता हूँ तो एक हूक-सी सीने में उठती है। कुछ ऐसा मुश्किल भी न था, "जन्नत परहेज़गार लोगों के क़रीब ले आई जाएगी, कुछ भी दूर न होगी" (क़ुरआन, 50:31)। लेकिन सारे मौक़ों को बर्बाद कर दिया, बे वजह गुनाहों का बोझ लादा।

ऐसे गुनाह कि सिवाय बर्बादी के कुछ नसीब न हो। यह लालच तो छोड़ना मुश्किल है कि वहाँ मुक़र्रबीन और साबिक़ीन के साथ दाख़िल हो, लेकिन यह एक मुश्किल ख़ाबो-ख़्याल लगता है। फिर साहिबे-यमीन (दाईं तरफ़ वाले) का सोचता हूँ, जिनके नेक आमाल ज़्यादा वज़नी होंगे सलामती उनके मुक़द्दर में होगी। बुरे आमाल भी लाए जाएँगे। दोनों पलड़ों पर नज़र डालता हूँ तो यहाँ भी उम्मीद नहीं बँधती कि उनके गरोह में शामिल होने के लायक़ बन सका हूँ। यह तो बहुत ही आसान था! फिर बाईं तरफ़ वाले, जहन्नमवालों का ज़िक्र पढ़ता हूँ तो भी यक़ीन नहीं आता कि इतना बुरा हूँ कि उनमें शामिल हो जाऊँगा। फ़िर क्या होगा? किनके गरोह में शामिल होऊँगा? तो अपना हाल ऐसा लगता है कि–

"कुछ और लोग हैं जिन्होंने अपने क़ुसूरों को मान लिया है, उनका

अमल मिला-जुला है कुछ अच्छे हैं और कुछ बुरे। दूर नहीं कि अल्लाह उनपर फिर मेहरबान हो जाए क्योंकि वह माफ़ करनेवाला और रहम फ़रमानेवाला है।'' (क़ुरआन, 9:102)

नेक आमल भी हैं, गुनाह भी हैं, मिले-जुले हैं, कुछ पता नहीं कि किसका पलड़ा भारी है, दोनों ही बहुत ज़्यादा हैं। अपने गुनाहों का एतिराफ़ भी है। उनका भी जिनको जानता हूँ, उनका भी जिनको नहीं जानता। जिस दिन सब देखकर ''वे अपने गुनाहों को स्वीकार करेंगे'' की कैफ़ियत इस हसरत के साथ आएगी कि ''काश! हम सुनते और समझते।'' इससे पहले ही यहीं सबका एतिराफ़ है, इक़रार है। रोज़ कहने की कोशिश करता हूँ कि ''तेरे सामने मुझे अपने गुनाह का इक़रार है। काश! हम सुनते या समझते'' की हसरत के आँसू भी आज ही हाज़िर हैं। इसलिए उम्मीद बँधती है, दूर नहीं कि माफ़ करनेवाला मेहरबान ख़ुदा नज़रे-करम फ़रमाए, तवज्जोह फ़रमाए, आग़ोशे-रहमत को खोल दे, आमालनामा सबके सामने न दे, उसे नश्र (प्रसारित) न करे, पर्दे का मामला पर्दे ही में रहे, लोगों के नेक गुमान ही का ख़याल रख ले कि इतने बन्दों का नेक गुमान ग़लत न हो, और मग़फ़िरत और रहमत से ढाँप ले। इस रहमत के सिवा तो किसी का भी कोई सहारा नहीं। जो सबसे क़रीब थे वे भी कह गए कि उसकी रहमत ही ढाँप ले तो ढाँप ले वरना और कोई आसरा नहीं। तीन बार पढ़ता हूँ और कान लगे रहते हैं कि कोई दिल को नवाज़ने वाली आवाज़ आए : उठ, तेरे गुनाह माफ़ कर दिए गए।

''बेशक तेरी मग़फ़िरत मेरे गुनाहों से ज़्यादा बड़ी है और मुझे तेरी रहमत का आसरा है, न कि अपने अमल का।''

कई बार मदीना मुनव्वरा में भी हाज़िरी के मौक़े पर तसव्वुर की आँखें उसी नज़ारे को देखने की आरज़ू में बही हैं, और दुरूद पढ़ते हुए सोचते हुए इसी वादे के पूरा होने की आरज़ू सीने में रही –

''अगर उन्होंने ये किया होता कि जब ये अपने नफ़्स पर ज़ुल्म कर

> बैठे थे तो तुम्हारे पास आ जाते और अल्लाह से माफ़ी माँगते और रसूल भी उनके लिए माफ़ी की दरख़ास्त करता तो यक़ीनन अल्लाह को बख़्शनेवाला, रहम करनेवाला पाते।" (क़ुरआन, 4:64)

बस हसरत और आरज़ू, आरज़ू और हसरत ......यही जिन्दगी का हासिल है।

इन मौक़ों पर तुम सबका अमल, उन ख़ैर की बातों पर जो मैंने यहाँ जमा कर दी हैं या जो कभी बयान की हैं या लिखी हैं, मेरे लिए सबसे क़ीमती तोहफ़ा होगा, मेरी सबसे बड़ी ख़िदमत होगी, मेरे साथ सबसे बड़ा ताल्लुक़ होगा, और इसके लिए मैं तुम्हारा सबसे बढ़कर एहसानमंद रहूँगा।

मैं तुम्हें अल्लाह से तक़वा की नसीहत करता हूँ, जैसा कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया :

> "तुमसे पहले जिनको किताब दी थी उन्हें भी यही हिदायत की थी और अब तुमको भी यही हिदायत करते हैं कि अल्लाह से तक़वा इख़तियार करो।" (क़ुरआन, 4:131)
>
> "अल्लाह से डरो जैसा कि उससे डरने का हक़ है। तुमको मौत न आए मगर इस हाल में कि तुम मुस्लिम हो।" (क़ुरआन, 3:102)
>
> (मैं तुम्हारा दीन और तुम्हारे आमाल के अन्जाम अल्लाह के हवाले करता हूँ।)

• • •